Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

28.8
3:2
ASG

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४.४
३:२

८६३०

Acc. No. ८६३०

Class No. १४.४ / ३:२ Book No. ______

Author बुद्धदेव विद्यालंकार

Title स्वर्ग

Due on	Borrower's Name	Returned on

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

14.4
3:2

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या ..१४.४ / ३:२ आगत संख्या...८६३०

पुस्तक वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४.४
३:२

८-६३०

Acc. No. ८-६३०

Class No. १४.४ ३:२ Book No.

Author बुद्धदेव विद्यालंकार

Title स्वर्ग

Due on	Borrower's Name	Returned on

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० आचार्य प्रियव्रत वेद
वाच स्पति
स्मृति संग्रह

15.4,3:2
8930

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्ग

४१९३०

DONATION

बुद्धदेव विद्यालंकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति स्मृति संग्रह

ओ३म्

परिचय

8930

वेद के स्वर्ग, पुराण के इन्द्र लोक और इस्लाम के बहिश्त में क्या भेद है ? स्त्रियों का एक सा ही वर्णन सब में है। अथर्व ४, ३४, ५ में तो उसे स्पष्ट "बहिष्ठ" कहा है फिर "बहिश्त" ने ही क्या अपराध किया है ? यह प्रश्न प्रचार काल में वारवार सामने आये जिन्हों ने मुझे स्वर्ग का तत्त्व जान ने की ओर प्रेरित किया। फिर मृतक श्राद्ध का प्रश्न भी पितृलोक और देवलोक आदि शब्दों का अर्थ निर्णय होने के आश्रित जान पड़ा। इन प्रश्नों ने अन्त को मुझे इस प्रश्न की गहरी मीमांसा कर ने के लिये बाधित कर दिया। सब से पहिले मेरा ध्यान स्वर्ग शब्द की व्युत्पत्ति की ओर गया। मुझे स्वः और स्वः + ग दो शब्द दीखने लगे। उसके पीछे यजुर्वेद के "त्रीन् स्वर्गान्९"(यजु० १३,३१) की ओर ध्यान गया। फिर ऋषि दयानन्द ने संस्कार विधि में वानप्रस्थ का प्रमाण देते हुए "नाकमाक्रमताम् तृतीयम्" (अथर्व ९,५,१) इस मन्त्र का प्रमाण दिया है, इस उद्धरण ने मार्गदर्शक का काम किया। अन्त को उस दिव्यदर्शी अग्रणी के पीछे चलने से जो कुछ अज्ञात तथ्य-रत्न मुझे प्राप्त हुए हैं उन्हें मैंने गुरुकुल काङ्गड़ी में विश्वविद्यालय व्याख्यान माला के रूप में पढ़ा। वहीं विद्वद्वर्य्य श्री बिश्वनाथ जी से कुछ रत्न प्राप्त हुए जैसे–' षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात्, स्वः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्वेनाभ्यश्नवातै । यह संन्यास की आज्ञा का निश्चायक प्रमाण जो मैंने पारायण में अङ्कित किया था किन्तु व्याख्यान लिखते समय ओझल हो गया था उन्हीं की कृपासे इस लेख में समाविष्ट हुआ। और भी कई निर्देश उनसे प्राप्त हुए जिनके लिये उनका धन्यवाद है । भाई प्रियव्रत जी का धन्यवाद मैं क्या करूं ? मेरी लिखी जो भी पुस्तकें छपती हैं उनकी छपाई आदि में जितने गुण होते हैं सो उन के होते हैं और दोष मेरे प्रमाद के । इस लिये आगे छपने वाले ग्रन्थों के लिये भी उन्हें पहिले से ही धन्यवाद दे देता हूं । इन शब्दों के साथ यह पुस्तक तत्वज्ञ परीक्षकों के चरणों में आदरपूर्वक उपहार करता हूं । खरे खोटे की वे जानें अथवा परमसाक्षी भगवान् जानें।

विद्वज्जनों का अनुचर

बुद्धदेव

विद्यालङ्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति
भूतपूर्व कुलपति, गुरुकुल काँगड़ी
विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त
संग्रह

स्वर्ग

अमरकोष में लिखा है—स्वरव्ययं स्वर्गनाक त्रिदिव त्रिदशालयाः। यहाँ पर अमरसिंह ने 'स्वः' 'स्वर्ग' और 'नाक' इन तीनों शब्दों को पर्य्यायवाची लिखा है। पर इसमें विचारणीय बात यह है कि 'स्वः' और 'स्वर्ग' दोनों का अर्थ एक कैसे हो सकता है ? 'स्वर्ग' का अर्थ है 'स्वः' की ओर जाने वाला। अब विचारना चाहिये कि 'स्वः' और 'स्वः' की ओर जाने वाला दोनों पर्य्यायवाची कैसे हो सकते हैं ? कलकत्ता और कलकत्ते की ओर जानेवाला मार्ग दोनों एक कैसे हो सकते हैं ? इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्वर्ग के विषय में प्रचलित पौराणिक स्वर्गमण्डल का विश्वास प्रमादमूलक है।

फिर प्रश्न उपस्थित होता है कि 'स्वर्ग' का वास्तविक अर्थ क्या है ? इसके निश्चय के लिये हमें वैदिक-साहित्य की सहायता लेनी पड़ेगी। पौराणिक मन्तव्यानुसार स्वर्गलोक एक लोक है जिसका राजा इन्द्र है। यह बात दूसरी है कि उसी के गन्धर्व-लोक आदि कई उपराज्य माने जाते हों, परन्तु वस्तुतः स्वर्गलोक एक ही है। पुराणों में बहुवचनान्त 'स्वर्गलोकाः' ऐसा शब्द कदाचित् ही प्रयोग में देखने में आता हो। परन्तु इसके विपरीत वेद में वर्षिष्ठे नाके, उत्तमं नाकं आदि अनेक प्रयोग देखने में आते हैं जिससे

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता लगता है कि यदि 'नाक' अनेक न हों तो 'सबसे उत्तम नाक' ऐसा प्रयोग नहीं किया जा सकता। इससे और अधिक स्पष्ट उदाहरण लीजिये। यजुर्वेद अध्याय १३ मन्त्र ३१ में लिखा है त्रीन्समुद्रान्समसृपत्स्वर्गान् यहाँ स्पष्ट तीन स्वर्ग बतलाये गये हैं। इसी मन्त्र की व्याख्या में शतपथब्राह्मण काण्ड ७ अध्याय ५ ब्राह्मण १ कण्डिका ९ में लिखा है—इमे वै त्रयः समुद्राः स्वर्गा लोकाः। यहाँ स्पष्ट तीन स्वर्गलोक स्वीकार किये हैं। पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौः यह तीन लोक वैदिक-साहित्य में प्रसिद्ध ही हैं। इन्हीं को स्वर्गलोक कहा गया है। अब देखना चाहिये कि लोक तीन से अधिक भी हैं वा तीन ही हैं। इस विषय में शतपथ ब्राह्मण प्रथम काण्ड अध्याय २ ब्राह्मण ५ कण्डिका १२ में लिखा है—तद् यदिमांल्लोकानति चतुर्थमस्ति वा न वा यही बात अध्याय २ ब्राह्मण २ कण्डिका २१ में फिर दोहराई गई है। अब प्रश्न उठता है कि क्या चतुर्थ-लोक की सत्ता के विषय में शतपथकार को सन्देह है कि वह है वा नहीं। पौराणिक लोगों को तो इस प्रश्न का उत्तर देना और भी कठिन है। क्योंकि उनकी दृष्टि में तो शतपथ ईश्वरीय ज्ञान है। तब क्या परमेश्वर को भी चौथे लोक की सत्ता में सन्देह है? इस जटिल उलझन का निर्णय तब ही हो सकता है जब 'लोक' शब्द का अर्थ ठीक ठीक समझ लिया जाय।

अब हम इस विषय में अपना मत प्रकाशित करते हैं। विद्वज्जन जानते हैं कि वैदिक साहित्य में द्यौः और पृथिवी को पिता और माता कहा गया है। इसके उलट विवाह संस्कार में पति को द्यौः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा पत्नी को पृथिवी कहा गया है। यह 'द्यौः' और 'पृथिवी' जहाँ इकट्ठे होते हैं वह 'अन्तरिक्ष' लोक है। इस प्रकार हमें ज्ञान हो गया कि अन्तरिक्ष लोक गृहस्थाश्रम का नाम है। अब यदि गृहस्थाश्रम को अन्तरिक्ष लोक मान लिया जाय तो 'पृथिवीलोक' 'ब्रह्मचर्य्याश्रम' का नाम तथा 'द्यौः लोक' वानप्रस्थाश्रम का नाम है।

अब हम इस कल्पना को प्रमाण से पुष्ट करते हैं। प्रश्नोपनिषद् के पंचम प्रश्न में शैब सत्यकाम को उत्तर देते हुए भगवान् पिप्पलाद कहते हैं—

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ॥ ३ ॥

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते। स सोमलोकं स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते ॥ ४ ॥

यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनुविप्रयुक्ताः। क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ॥ ६ ॥

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते। तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ॥ ७ ॥

इस प्रकरण में इतनी बातें स्पष्ट होती हैं (१) ऋक् के द्वारा पृथिवी-लोक (२) यजुः के द्वारा अन्तरिक्ष-लोक (३) साम के द्वारा कविलोक तथा (४) ओङ्कार के द्वारा शान्त, अजर अमर लोक की प्राप्ति होती है। इनमें से प्रथम तीन लोकों को मृत्युमत्यः मात्राः कहा गया है। हाँ, निष्काम भाव से काम करने वाला 'ज्ञ' अर्थात् ज्ञानी उससे साफ़ पार निकल जाता है। प्रथम-लोक की प्राप्ति ओङ्कार की प्रथम मात्रा से होती है। द्वितीय लोक की प्राप्ति ओङ्कार की द्वितीय मात्रा से होती है। तीसरे-लोक की प्राप्ति तीसरी मात्रा से होती है। और तीसरे लोक में साम मनुष्य को ब्रह्मलोक तक पहुँचाता है।

प्रथम-लोक में ब्रह्मचर्य और श्रद्धा की प्राप्ति होती है, यह मनुष्य-लोक है। द्वितीय लोक में विभूति की अर्थात् ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, यह सोम-लोक है। तीसरे लोक में पाप से छूटता है और ब्रह्म-लोक की ओर ले जाया जाता है, यह सूर्य-लोक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि सोम-लोक और चन्द्रलोक पर्याय्यवाची हैं। इस चन्द्र-लोक के विषय में प्रथम प्रश्न में कह आये हैं—

साम्वत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च। तद्ये ह वै तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते। त एव पुनरावर्तन्ते तस्मादेते ऋषय प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते। एष ह वै रयिर्यः पितृयाणः॥

इस में बताया गया है कि दक्षिणायन मार्ग से जानेवाले ऋषि सन्तान उत्पन्न करते हैं और चन्द्र-लोक को प्राप्त करते हैं। इस से स्पष्ट है कि 'चन्द्र-लोक' अथवा 'सोमलोक' प्रजा-कामों का आश्रम अर्थात् 'गृहस्थाश्रम' है।

सार

ओङ्कार की

मात्रा	साधन	फल	लोक	आश्रम
प्रथम	ऋक्	ब्रह्मचर्य्य	मनुष्य	ब्रह्मचर्य्य
द्वितीय	यजुः	विभूति	सोम	गृहस्थ
तृतीय	साम	तेज	सूर्य	वानप्रस्थ
चतुर्थ	ओङ्कार	शान्ति अभय	पर	संन्यास

अब प्रश्न हो सकता है कि ओङ्कार की चौथी मात्रा कहाँ हो सकती है। ऐसा प्रश्न करने वालों को माण्डूक्योपनिषद् का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह स्थल सदा ध्यान में रखना चाहिये—

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥ ६ ॥

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति य एवं वेद ॥१०॥

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदꣳसर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद य एवं वेद ॥ १२ ॥

अब यदि यहाँ ऋक्, यजुः, साम तथा ओंकार के स्थान में ज्ञान, कर्म, उपासना तथा विज्ञान रखदें तो कुछ अनुचित न होगा। ज्ञान प्राप्ति का आश्रम ब्रह्मचर्याश्रम है। यही बात यहाँ स्पष्ट रूप से कही भी गई है। यजुर्वेद कर्मकाण्ड का वेद है। यह सभी जानते हैं। उसका फल विभूति है। इसलिये इसके लोक के गृहस्थाश्रम होने में भी कुछ सन्देह नहीं है। जब दो निश्चित हो गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो शेष दो की व्यवस्था स्वयं ही हो जाती है। यही बात शतपथ-ब्राह्मण, चतुर्दश काण्ड, चतुर्थाध्याय, तृतीय ब्राह्मण, चौबीस कण्डिका में एक और प्रकार से कही गई है। वहाँ यह बताया गया है कि एक गृहस्थ तीनों लोकों को कैसे विजय कर सकता है। इस विषय में वे कहते हैं—

अथ त्रयो वाव लोकाः मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोक इति सोऽयं मनुष्यलोकः पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणा, कर्मणा पितृलोको, विद्यया देवलोको, देवलोको वै लोकानाᳬ श्रेष्ठस्तस्माद्विद्यां प्रशᳬसान्ति ॥ २४ ॥

एक गृहस्थ जब गृहस्थ में प्रवेश कर चुका, पितृलोक का स्वामी बन गया, कर्म काण्ड का जीवन बिताने लगा, क्या वह तब भी 'मनुष्य-लोक' अथवा 'ब्रह्मचर्य्याश्रम' का स्वामी बन सकता है? उत्तर मिलता है कि अवश्य बन सकता है। वह अपने पुत्र को ब्रह्मचर्य्याश्रम में भेज सकता है। गृहस्थ के पास ब्रह्मचर्याश्रम की सहायता का इससे बड़ा उपाय कोई नहीं। पितृ-लोक का मालिक तो वह है ही क्योंकि वह कर्म-क्षेत्र में प्रवेश करके बालक का पिता बनता है। और यदि वह देव-लोक को जीतना चाहे तो वह विद्या दान करे अर्थात् वानप्रस्थ-आश्रम में प्रवेश करके ऋषि-ऋण से मुक्त हो अथवा गृहस्थ में रहते हुए भी यथाशक्ति विद्या दान करे। यह देव-लोक सबसे श्रेष्ठ है।

इस प्रकार हमने यह दिखा दिया कि पृथिवी, अन्तरिक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और द्यौःलोक क्रम से ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ का नाम है यह तीन आश्रम पालन करना सबका धर्म्म है अब वह प्रसंग भी स्पष्ट हो जाता है जिसमें शतपथकार ने कहा—चतुर्थमस्ति वा नास्ति वा। चतुर्थ आश्रम सब के लिये आवश्यक नहीं। प्रत्युत इच्छा रखने वालों में भी कोई-कोई ही उसके ग्रहण करने का अधिकारी है। इसलिये चतुर्थ-लोक है भी और नहीं भी। यह चतुर्थ-लोक 'स्वर्लोक' है और शेष तीन लोक उसकी ओर ले जानेवाले स्वर्गलोक हैं। इस व्याकरण के सूक्ष्म मर्म को न जानकर अथवा प्रमादवश उपेक्षा करके पौराणिक टीकाकारों और कोषकारों ने खूब धाँधली मचाई है।

इस मर्म के समझ लेने से यजुर्वेद के निम्न लिखित मन्त्रों पर कैसा प्रकाश पड़ता है यह विद्वज्जन स्वयं अनुभव करेंगे:—

पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्। दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम्॥ १७। ६७॥
स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आद्याꣳ रोहन्ति रोदसी। यज्ञं ये विश्वतोधारꣳ सुविद्वाꣳसो वितेनिरे॥ १७। ६८॥

अब इस मन्त्र का अर्थ स्पष्ट है कि यजमान अपने विषय में कहता है कि मैं पृथिवी लोक अर्थात् ब्रह्मचर्य्याश्रम से अन्तरिक्ष अर्थात् गृहस्थाश्रम में जाता हूँ। वहां से द्यु लोक अर्थात् वानप्रस्थ आश्रम में जाता हूँ फिर दुःख रहित द्युलोक से ज्योतिर्मय स्वर्लोक में अर्थात् संन्यास में जाऊँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह वर्णन क्रमशः आश्रमों को पालन करनेवाले एक गृहस्थ का है । अगले मन्त्र में असाधारण शक्ति रखनेवाले यजमानों का वर्णन है । उनके विषय में कहते हैं कि स्वर्लोक की ओर जाते हुए बहुत से यजमानों को बीच की सीढ़ियों की अपेक्षा नहीं रहती । वह द्यौः तक सीधे चढ़ जाते हैं । परन्तु वह अवस्था उन गिने चुने अत्यन्त उत्कृष्ट-कोटि के विद्वानों की ही होती है जो देशादि मर्यादाओं के बन्धन में न पड़कर विश्वतोधार अर्थात् चौमुखा यज्ञ करते हैं । पृथिवी आदि लोक के प्रश्नोपनिषद् में वर्णित अर्थ स्वीकार कर लेने से यह दोनों कैसे स्पष्ट होगये हैं ।

यही नहीं । स्वर्ग में शरीरधारी होने के जो प्रमाण मिलते हैं उस से भी पता लगता है कि यह वर्णन इसी लोक के हैं :—

(१) प्रतितिष्ठा शरीरैः स्वर्गं याहि पाथिभिर्देवयानैः ।

तू देवयान मार्ग से स्वर्ग में जा, और वहाँ अपने शरीरों से प्रतिष्ठित हो । (अ० २,३४,५)

(२) तन्वं स्वर्गो बहुधा विचक्रे यथाविद आत्मन्नन्यवर्णाम् । अपाजैत् कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि । (अ० १२ । ३ । ५४)

स्वर्ग ने तत्त्वज्ञानी के लिये उसके शरीर को ऐसे रङ्ग में रँग दिया—उसमें ऐसे बहुविध परिवर्त्तन कर दिये हैं कि उसे अपने आपको भी अपना आप और का और वर्णवाला दीखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा है, उसने अपनी रुशती अर्थात् सत्वगुणमयी तनू को और पवित्र कर दिया है, जिससे कृष्णा अर्थात् तमोगुणमयी तनू तो बिलकुल पराजित ही होगई है, शेष रही खून की गति तीव्र करने वाली लाल रंग की रजोमयी तनू सो उसको भी परमाग्नि परमात्मा में आहुति करता हूँ। अर्थात् तमोगुण तो नष्ट कर दिया और रजोगुणमयी शक्ति का केवल मार्ग बदल देता हूँ इतने से काम चल जाता है। यहाँ यह भी देखना चाहिये कि स्वर्ग कर्त्ता है। (अथर्व १२)

(३) स्वर्ग में पिता-पुत्र का वर्णन भी लीजिये—

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः। अश्रोणा अङ्गैरहुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥ (अ० ६ । १२० । ३)

जहां उत्तम हृदय तथा परस्पर मैत्री रखने वाले पुण्यकर्म्मा अपने शरीर के रोगों से आरोग्य लाभ करके आनन्द पाते हैं उस स्वर्ग-लोक में हम माता-पिता तथा पुत्र दोनों का दर्शन करें।

यह स्पष्ट गृहस्थाश्रम का वर्णन है।

(४) अब वानप्रस्थ में शरीर-शुद्धि का वर्णन देखिये और वानप्रस्थ की आयु क्या है वह भी वेद से ही सुनिये—

यह अथर्ववेद के छठे काण्ड का १२२ सूक्त है। वानप्रस्थ में प्रवेश के समय प्रविविक्त अपने पुत्र, पुत्र-वधू, तथा पौत्रादि परिवार की ओर निर्देश करके श्लेष द्वारा प्रभु तथा कुल पुरोहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सम्बोधन करके कहता है कि—

एतं भागं परि ददामि विद्वान् विश्वकर्मन् प्रथमजा ऋतस्य । अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनु सं तरेम ॥ १२२ । १ ॥

"हे (ऋतस्य) ज्ञान भण्डार के (प्रथमजाः) अग्रगण्य (विश्वकर्म्मन्) विश्वकर्म्मन्! (विद्वान्) गृहस्थादि आश्रमों की महिमा जाननेवाला मैं (एतम्) इस कुटुम्ब को (भागम्) लोकोपकार के लिये अपने भागरूप (परिददामि) आपके अर्पण करता हूँ। हम लोग (जरसः) जरागम के (परस्तात्) पीछे से (अस्माभिः) हमारे द्वारा (दत्तम्) दिये हुए (अच्छिन्नम्) अविच्छिन्न (तन्तुम्) प्रजातन्तु के (अनु) सहारे से (संतरेम) संसारसागर को तरजावें अर्थात् बुढ़ापे के पीछे गृहस्थाश्रम की ओर हमारा कर्त्तव्य पूरा हुआ। अब हमारा इसके सम्बन्ध में तरना या डूबना इन सन्तानों के हाथ में है। चाहें तो हमारी कीर्ति रक्खें चाहे डुबादें।

आगे अपने त्यज्यमान कुटुम्ब को सम्बोधन करके कहता है कि बच्चे! दान करके अभिमान में मत आना। निस्सन्देह तुम दान करोगे परन्तु इस संसार में तुम से भी बढ़कर दानी पाए जाते हैं।

ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायनेन । अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एव ॥ १२२ । २ ॥

देखो, (एके) एक तो तुम सरीखे (ततम्) अविच्छिन्न रूप से आए हुए (तन्तुम्) कुल तन्तु के (अनु) सहारे (तरन्ति) तर जाते हैं, वह वे लोग हैं (येषाम्) जिन के लिये (आयनेन) कुल परम्परा के मार्ग से (पित्र्यम्) पितृपैतामह भाग (दत्तम्) दिया गया है। किन्तु उनको भी देखो कि वह भी (एके) एक हैं जो (अबन्धु) बन्धुहीन होकर भी अर्थात् माता-पिता से कुछ न पाकर अपने बाहु-बल से उपार्जन करके भी (ददतः) दान करने वाले और (प्रयच्छन्तः) खूब दान करने वाले हैं (चेत्) यदि वह तुम्हें (दातुं) दान देने की शिक्षा दे दें। तो (सः) वह तुम्हारा गृहस्थाश्रम (स्वर्गः) स्वर्ग (एव) ही है। इस लिए—

अन्वारभेथामनुसंरभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते। यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती संश्रयेथाम् ॥ १२२ । ३ ॥

हे ! (दम्पती) मेरे पुत्र तथा पुत्र-बधू तुम दोनों दम्पती (अन्वारभेथाम) जैसा हमने किया उसी रेखा पर काम किये जाओ। (अनुसंरभेथाम्) हमारे पीछे परस्पर मिलकर काम करो जिससे कि किसी दिन तुम भी हमारे वानप्रस्थ में प्रवेश के योग्य बनो क्योंकि (श्रद्दधानाः) सत्य के लिये मरमिटने वाले लोग ही (एतम्) इस पवित्र वानप्रस्थाश्रम में (सचन्ते) प्रवेश करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे दम्पती ! तुम दोनों (यद्) जो (वाँ) तुम्हारे (अग्नौ) यज्ञाग्नि तथा चूल्हे की अग्नि में (पक्वम्) पाक को प्राप्त हुआ है और (परिविष्टम्) प्रजा के सुख के लिये परोसा है (तस्य) उसकी (गुप्तये) रक्षा के लिये हमारे पीछे (संश्रयेथाम्) मिल कर पहरा दो और इस गृहस्थाश्रम में डेरा करो। आगे और लीजिये :—

यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तमन्वारोहामि तपसा सयोनिः उपहूता अग्ने जरसः परस्तात् तृतीये नाके सधमादं मदेम ॥ अथ० ६ । १२२ । ४ ॥

अब मैं इस गृहस्थाश्रम के (अनु) पीछे (मनसा) अपने मन द्वारा (यन्तँ) आगे चलने वाले (बृहन्तम्) और बड़े (यज्ञम्) वानप्रस्थ नामक यज्ञ में (तपसा) तप का (सयोनिः) सहवासी होकर (आरोहामि) चढ़ता हूँ । हे (अग्ने) परमनायक प्रभो ! हम सब लोग (जरसः) जरागम के (परस्तात्) पीछे (उपहूताः) तेरे द्वारा बुलाए हुए (तृतीये) तीसरे (नाके) स्वर्ग वानप्रस्थ में (सधमादं) एक साथ मिलकर प्रसन्न होते हुए (मदेम) आनन्द पाएँ ।

इससे कुछ सूक्त पूर्व ही ११७ सूक्त से इस पर और प्रकाश पड़ता है—

इहैव सन्तः प्रतिदद्म एनज्जीवा जीवेभ्यो निहराम एनत् ॥ अथ० ६ । ११७ । २ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम लोग (इहैव) इसी जन्म में (सन्तः) रहते हुए (एनत्) यह सब ऋण (प्रतिदद्मः) चुका देवें। (जीवाः) जीवित होते हुए ही (एनत्) यह सब (निहरामः) जहाँ जिसका देय है वहाँ पहुँचा देवें।

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम। ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम ॥ अथ० ६। ११७। ३ ॥

हे प्रभो ! (ये) जो (देवयानाः) देवयान (च) और (पितृयाणाः) पितृयाण (लोकाः) मार्ग हैं उन (सर्वान्) सब (पथः) मार्गों में (अनृणाः) ऋणमुक्त होकर (क्षियेम) निवास करें और इस प्रकार हम (अस्मिन्) इस ब्रह्मचर्य्याश्रम में (अनृणाः) ऋणमुक्त हों (तृतीये) तीसरे (लोके) आश्रम वानप्रस्थ में (अनृणाः) ऋणमुक्त (स्याम) हों। यहाँ तीन बात ध्यान देने योग्य हैं—

(क) 'लोकाः' और 'पथः' पर्य्यायवाची होकर आए हैं।

(ख) 'परलोक' का अर्थ मृत्यु नहीं क्योंकि उससे आगे "तीसरे लोक" का भी वर्णन है।

(ग) ब्रह्मचर्य्य में ऋणमुक्त होने का वर्णन है। सो यह उनका वर्णन समझना चाहिये जो ब्रह्मचर्य्य से ही संन्यासी हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी भाव की पुष्टि अथर्व्व ११-१-२८,३०,३१ में आनेवाले कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः, पन्थां स्वर्गमधिरोहेयैनम्, कृण्वे पन्थां पितृषु यःस्वर्गः ।" इस वाक्य से भी होती है। और लीजिये :—

उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि संश्रयेथाम् ॥ अथ० १२ । ३ । ६ ॥

द्यावा-पृथिवी दोनों के बीच तथा ब्रह्मचर्य्य-गृहस्थ इन दोनों में यज्ञशीलों ने जो स्वर्गामी लोक जीते हैं उनसे आगे जो आनन्दमय ओर ज्योतिर्मय लोक हैं, यह लोक दम्पती अपने पुत्रों के बल से पितृऋण से मुक्त होकर 'जरसि' अर्थात् वृद्धावस्था में उस स्वर्ग में आश्रय करें। 'जरसः परस्तात्' का अर्थ कोई जरा समाप्ति के पीछे न करे इस लिये यहाँ 'जरसि' आगया है। और लीजिये :—

षष्टयां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्केनाभ्यश्नवातै। उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः ॥ अथ० १२ । ३ । ३४ ॥

साठ वर्ष की अवस्था में अपने धर्म्मरूप कोश की रक्षा करने वाला मनुष्य अपने परिपक्व जीवन से 'स्वः' अर्थात् संन्यास पद को प्राप्त करने की इच्छा करे। उसके बाद पितृश्रेणी के वानप्रस्थी और पुत्रश्रेणी के गृहस्थ लोग सब का यह उपजीव्य हो। हे प्रभो! इस के इस स्वर्ग वानप्रस्थाश्रम को अग्नि के अन्त को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचा। संन्यास में 'आत्मन्यग्नीन् समारोप्य' के कारण अग्निः होत्रादि बन्धन छूट जाता है। यह सब को ज्ञात ही है।

(५) एक और मन्त्र देते हैं जिससे पितरों का साधारण जीव-लोक-वासी मनुष्य होना स्पष्ट होता है। पहिले देखिये प्रकरण क्या चल रहा है?

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषान्नुगादपरो अर्थमेतम्। शतञ्जीवन्तः शरदः पुरुचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्व्वतेन॥ अथ० १२। २। २३॥

हे जीवो! मैं तुम सब जीवों के लिये यह मर्य्यादा नियत करता हूँ और तुम लोगों को उचित है कि तुम में से कोई भी इस बात का उल्लंघन न करे। तुम सब सौ वर्ष जीते हुए अनेक विध चेष्टाओं द्वारा मृत्यु के रास्ते में पर्वत अड़ादो। आगे मन्त्र ३० में कहा है :—

मृत्योः पदं योपयन्त एतद्राघीय आयुः प्रतरं दधाना। आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेथ जीवासो विदथमावदेम॥ अथ० १२। २। ३०॥

हे मनुष्यो! तुम्हारा धर्म्म है कि तुम मौत के पैरों को बाहर अटकाते हुए संसार-सागर से पार उतारने वाली दीर्घ और दीर्घतर आयु धारण करते हुए, साथ मिलकर बैठे हुए परस्पर मिलकर ऐसा आसन जमाओ कि मृत्यु को दूर भगादो और सदा यही भावना किया करो कि हम जीवित रहते हुए ज्ञान चर्चाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भाग लेते रहें। यही नहीं, स्त्री-पुरुष सब ऐसा करें इसलिये स्त्रियों को पृथक् करके कहते हैं :—

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा संस्पृशन्ताम्।

अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे॥ (अथ० १२।२।३१)

यह स्त्रियें भी यत्न करें जिससे अविधवा और सुपत्नी रहें। इनके नेत्रों का अञ्जन और चूल्हे का घी सदा बना रहे अर्थात् यह सदा सौभाग्य और ऐश्वर्य्य सम्पन्न बनी रहें। न इन्हें आँसू आवें न रोग हों, उत्तम सन्तानरूपी रत्नों की जननी बनने के पश्चात् अब यह आगे वानप्रस्थ योनि अर्थात् पदवी पर आरूढ़ हों।

व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि स्वधा 'पितृभ्यो' अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि॥ (अथ० १२।२।३२)

हे मनुष्यो! सुनो, मैं इनको अर्थात् गृहस्थवासी दम्पती को वानप्रस्थवासी दम्पती से हविद्वारा 'व्याकरोमि' पृथक् करता हूँ। यह हवि पकाएँगे अर्थात् निमन्त्रण देने के लिये भोजन पकाएँगे और वह निमन्त्रण पाएँगे। आज से इन गृहस्थों और इनके वानप्रस्थवासी पितरों का आह्वानीयाह्वातृरूप, निमन्त्र्य-निमन्त्रकरूप सम्बन्ध होगा। साथ ही 'तौ' अर्थात् उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार के मुख्य अङ्ग गृहस्थ को छोड़कर जानेवाले वानप्रस्थी दम्पती को 'ब्रह्मणा' वेदाभ्यास से, स्वाध्याय यज्ञ से, विशिष्ट सामर्थ्ययुक्त करता हूँ। उनका इनसे उपदेश्योपदेशक सम्बन्ध होगा। यह जो मैंने नियम बना दिया है कि गृहस्थ 'पितरों' को बुलाकर अन्न दिया करें इससे मैं पितरों के लिये—वानप्रस्थवासी बुजुर्गों के लिये—अजर स्वधा अर्थात् अटूट अन्न प्राप्ति का साधन स्थापित करता हूँ और इस प्रकार पितरों को दीर्घायु से संयुक्त करता हूँ।

यहाँ प्रसंग से इस रहस्य का वर्णन कर देना भी अनुचित नहीं कि पितरों के अन्न को 'स्वधा' क्यों कहते हैं। जब तक माता पिता हमें अन्नादि से पुष्ट करते हैं, हमारे पोषक होते हैं, तब तक हमारे हृदय में उनके प्रति जो आदर-बुद्धि होती है उस में 'स्व' की अपेक्षा 'सु' बुद्धि प्रधान होती है। उस समय तक हमारे हृदय में माता-पिता के प्रति प्रशंसा है अथवा विशुद्ध प्रेम यह पता नहीं लगता। किन्तु जब वह वृद्ध होकर हमारे पोष्य होजावें उस समय 'सु' और 'कु' का प्रश्न नहीं रहता। अब तो वह अच्छे भले कैसे भी हों हमारे 'स्व' हैं इसलिये सेवनीय हैं। इसलिये उस समय उनको दिये जानेवाले अन्न में 'स्वधा' शब्द रूढ होगया है।

क्या यहाँ कोई सन्देह कर सकता है कि पितर लोग वृद्ध-जन नहीं हैं ?

फिर क्योंकि उन पितरों को सम्बोधन करके कहा गया है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयम्'॥ (अथ० ९।५।११)

इससे पता लगा है कि नवम मण्डल गत नाकसूक्त में 'तृतीय नाक' तृतीय आश्रम' है। जब तीसरा नाक तीसरा आश्रम है तो प्रथम द्वितीय नाक क्रमशः ब्रह्मचर्य्य तथा गृहस्थाश्रम स्वयं ही होगये।

इस प्रकार 'तीन आश्रम' 'तीन स्वर्ग' हैं और चौथा 'स्वः' है यह स्पष्ट होगया।

अब एक और बात ध्यान देने योग्य है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है:—

तिर इव वै पितरो मनुष्येभ्यः॥ श० २।४।२।२१॥

तिर इव वै पितरः॥ श० २।६।१।१९॥१३।८।३।२॥

इसका अर्थ है कि पितरलोग मनुष्यों से छिपे हुए से हैं। अब पौराणिक सिद्धान्तानुसार पितरलोक भूलोक से बिल्कुल भिन्न पितृलोक अथवा चन्द्रलोक नामी किसी लोकान्तर में रहते हैं। परन्तु यदि शतपथकार को भी यही अभीष्ट होता तो वे 'तिरो वै पितरो मनुष्येभ्यः' ऐसा लिखते। परन्तु यहाँ उन्होंने 'तिर इव वै' लिखा है। अर्थात् वह छिपे हुए नहीं किन्तु छिपे हुए से हैं। यह इव अर्थात् से हमारे सिद्धान्त का सबसे बड़ा पोषक है। पितर मनुष्यों से छिपे हुए नहीं किन्तु छिपे हुए से हैं। इससे स्पष्ट है कि वे लोकान्तर में नहीं रहते किन्तु इसी लोक में रहते हुए घरबार परित्याग करके वानप्रस्थ में निवास करने के कारण साधारण प्रजा से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिरोहित (Retired) से रहते हैं। यह बात शतपथ-ब्राह्मण में स्पष्ट रूप से कही गई है। उसका प्रमाण इस प्रकार है:—

यमो वैवस्वतो राजेत्याह तस्य पितरो विशस्तऽइमऽआसतऽइति स्थविरा उपसमेता भवन्ति तानुपादिशति यजूंषि वेदः सोऽयमिति । (आश्वलायनश्रौतसूत्र १०।७।२।। शांखायन श्रौतसूत्र १६।२।४-६।।) श० १३।४।३।६ ।।

यहाँ स्पष्ट लिखा है कि 'स्थविराः' अर्थात् बूढ़े लोग जो अश्वमेध की सभा में उपस्थित होते हैं वही पितर हैं। और यम वैवस्वत मरे हुओं का राजा नहीं किन्तु उन्हीं का राजा है।

अब एक प्रश्न और उपस्थित होता है कि पितृलोक, पतिलोक आदि शब्द इस लोक के ही भिन्न २ स्थानों में कहीं प्रयुक्त भी होते हैं ? सो इसके विषय में भी हम अथर्व वेद का प्रमाण उपस्थित करते हैं:—

उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ।
अवदीक्षाममृक्षत स्वाहा ॥ (अथ० १४।२।५२)

ये पितृलोक से पतिलोक में जानेवाली पति के प्रेम में भरी हुई कन्या आज विवाह-काल में ब्रह्मचर्य्याश्रम की दीक्षा का विसर्जन कर चुकी है। यहाँ पिता का घर छोड़कर पति-कुल में जाने वाली नव-वधू के विषय में उन्हीं 'पितृलोक' और 'पतिलोक' शब्दों का प्रयोग किया गया है।

अब यदि इस अर्थ को स्वीकार करके अन्य प्रकरणों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प० आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति

स्मृति संग्रह

भी उसे लगाकर देखें और फिर हम यह पायें कि जो अर्थ पहिले अस्पष्ट था वह अब निस्पष्ट हो जाता है तो हमें और भी निश्चय हो जायगा कि हमारा अर्थ ठीक है। उदाहरण के लिये एक मन्त्र लीजियेः—

8930

ओं सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्। ताँ आविवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये॥ (ऋ० १०।६३।५)

अब इस मन्त्र में 'दिविक्षयम्' का अर्थ 'वानप्रस्थ-आश्रम में निवास' (क्षि निवासगत्योः) इस प्रकार कर लेने से न तो राजाओं के लिये किसी देवलोक की कल्पना करनी पड़ती है, और, साथ ही एक ऐसे गम्भीर रहस्य का प्रकाश होता है जो भारतीय सभ्यता के उज्ज्वलतम रत्नों में से है और जिसके अपनाने से पहले भारत का कल्याण होता रहा है और आगे समस्त विश्व का कल्याण होगा। मन्त्र का अर्थ इस प्रकार हैः—

(अपरिह्वृता) कुटिल गति से न चलने वाले (सुवृधः) धार्मिक मार्ग से साम्राज्य की वृद्धि करने वाले (ये सम्राजः) जो सम्राट् लोग (यज्ञमाययुः) लोकोपकार में दीक्षित होते हैं और (दिविक्षयम् दधिरे) फिर वानप्रस्थ आश्रम में निवास करते हैं (तान्) उनको (नमसा) सिर झुकाने अर्थात् नम्रता धारण करने से (सुवृक्तिभिः) राजस तामसादि भिन्न सत्त्वा त्याग धारण करने से (महः) तेज (आविवास) आच्छादन कर लेता है।

१४.४
१.२
८९३०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ वेद ने बड़े सुन्दर रूप में राजराजेश्वर तक के लिये मुनि-वृत्ति धारण करके विद्यादान द्वारा देवलोक के विजय करने का आदेश किया है इसी लिये शतपथ ब्राह्मण ने कहा है:—

'विद्यया देवलोकः' शत० (१४।३।२४)

एक बात और विचारनी चाहिये। शतपथ ब्राह्मण, प्रथम काण्ड, अध्याय ७, ब्राह्मण ५ कण्डिका ३ में लिखा है कि प्रत्येक मनुष्य पर ऋषि-ऋण है और जब तक वह अपने पीछे किसी दूसरे को न पढ़ाले तब तक इस ऋण से नहीं छूटता। इससे स्पष्ट है कि विद्यादान करना मनुष्य मात्र का धर्म है। ब्राह्मण तो गृहस्थाश्रम में भी विद्यादान करता है। इसलिये इस ऋण से मुक्त हो जाता है। परन्तु क्षत्रिय, वैश्य इस ऋणसे कैसे मुक्त हों ? इसलिये वानप्रस्थाश्रम की स्थापना की गई है। ऋण ऐसी वस्तु है जिससे छुटकारा पाये विना मनुष्य अपराधी होता है। और गृहस्थाश्रम में क्षत्रिय वैश्यों को छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं, इसलिये क्षत्रिय-वैश्य भी इस देवलोक में प्रवेश करते हैं और ब्राह्मणों की छत्रछाया में रहकर विद्या के ग्रहण तथा दान द्वारा इस देवलोक को जीतते हैं। इसीलिये कहा है—

विद्यया देवलोकः

(शत० १४।४।३।२४)

यह न समझा जाय कि यह केवल हमारी कपोल-कल्पना है। महाराज दिलीप का वर्णन करते हुए कविवर कालिदास कहते हैं:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे, नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम् । मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये, गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ।

अर्थात् महाराज दिलीप ने युवापुत्र को राज्य देकर मुनिवन के वृक्षों की छाया का आश्रय लिया और ऐसा केवल दिलीप ने ही नहीं किया प्रत्युत इक्ष्वाकुवंश के राजाओं का यह कुलव्रत था। इसी तरह एक और स्थान पर कविवर भवभूति लिखते हैं:—

पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद् वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम्
धृतम्बाल्ये तदार्य्येण पुण्यमारण्यकव्रतम् ।

अर्थात् पुत्रों को लक्ष्मी सौंपने के पीछे वृद्ध इक्ष्वाकु राजा जिस वानप्रस्थ व्रत को धारण करते थे वह आप ने बाल्यावस्था में ही धारण कर लिया है।

सार यह हुआ कि 'नाक' अर्थात् 'दुःखरहित स्थान' अनेक हैं। उनमें से 'चार आश्रम' भी 'चार नाक' हैं। इन चार नाकों में से प्रथम तीन 'स्वर्ग' अर्थात् 'स्वः' की ओर ले जाने वाले हैं और चौथा 'स्वः' अर्थात् सुखस्वरूप है। इसीलिये यजुर्वेद में भी कहा है 'त्रीन् स्वर्गान्' (यजु० १३। ३१) शतपथ में कहा है 'त्रयः स्वर्गा लोकाः' (शत० ७। ५। १९) यह बात भी बड़ा महत्व रखती है कि जहाँ तक हमारे देखने में आया है वैदिक-साहित्य में तीन से अधिक स्वर्गलोक कहीं नहीं गिनाये गये हैं। इससे भी हमारी इस स्थापना की पुष्टि होती है कि स्वर्ग नाम प्रथम तीन आश्रमों का है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नाक' अर्थात् सुखदायक तो चारों ही आश्रम हैं। परन्तु 'वर्षिष्ठ नाक' अर्थात् श्रेष्ठतम सुखदायक 'स्वः' अर्थात् सुखस्वरूप चतुर्थाश्रम की ओर जानेवाले प्रथम तीन आश्रम हैं। इससे वानप्रस्थाश्रम का प्रमाण उपस्थित करते हुए ऋषि दयानन्द ने 'आनयैतमारभस्व०' (अथर्व कां० ९ सू० ५ मं० १) इस मन्त्र की व्याख्या में नाकमाक्रमतां तृतीयं' इस वाक्य का जो "तीसरे दुःखरहित वानप्रस्थाश्रम को रीतिपूर्वक आरूढ हो" इस प्रकार अर्थ किया है उसकी पुष्टि होती है। साथ ही अथर्व के इस सूक्त की व्याख्या में पशुयागवादी भाष्यकारों ने जो अकाण्ड ताण्डव किया है उसकी उपहसनीयता सुप्रकाशित होजाती है। इसका विशेष रहस्योद्घाटन हम आगे चलकर इस सूक्त की व्याख्या के अवसर पर करेंगे।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम स्वर्ग

अब हमें तीन स्वर्गों के तीन आश्रम मानने से जिन अस्पष्ट भागों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है उनका एक और उदाहरण उपस्थित करना है। अथर्ववेद चतुर्थ काण्ड, सप्तम अनुवाक, ३४ सूक्त में स्वर्ग का वर्णन आया है। पौराणिक-स्वर्ग इसी का विकृत रूप है। मुसलमानों का बहिश्त पौराणिक स्वर्ग का रूपान्तर है। पौराणिक तथा मुसलमानी स्वर्ग दोनों में से कौन अधिक भद्दा है, यह निश्चय करना कठिन है। परन्तु इन दोनों भद्दे स्वरूपों में मूल वैदिक-स्वर्ग की झलक अवश्य दिखाई देती है। वैदिक-स्वर्ग में स्त्रियें हैं। पौराणिक-स्वर्ग में अप्सराएँ हैं। मुसलमानी-बहिश्त में हूरें हैं। परन्तु इस आपाततः थोड़े से भेद से परिणाम में कितना बड़ा भेद उपस्थित हो जाता है उसे देख कर रेलगाड़ी के काँटे बदलनेवाले का दृष्टान्त याद आ जाता है। लाहौर से कलकत्ते और बम्बई जाने वाली गाड़ियों का काँटा जहाँ बदला जाता है वहाँ दोनों पटरियों में प्रादेश मात्र (बालिश्त भर) भी दूरी नहीं होती। परन्तु यह थोड़ी-सी दूरी ही दोनों में से एक को बम्बई पहुँचा देती है और एक को कलकत्ते। यही अवस्था स्त्री, अप्सरा और हूर इन तीन शब्दों ने यहाँ की है। स्त्री शब्द स्त्री-जाति मात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वाचक है। उसमें कुमारी कन्याएं, नव-परिणीता कुल वधुएं, वृद्धाएं सभी सम्मिलित हैं। पुराण की अप्सराएं भोग-विलास का साधन हैं तथा भोग-विलास ही उनके जीवन का उद्देश्य है। परन्तु वह पराधीन नहीं हैं। उनकी इच्छा जितने दिन जिस देवता के पास रहने की हो रहें, और जब चाहे किसी दूसरे के पास चली जाएं। बहिश्त की हूरें ठीक उसी प्रकार भाग्यों की मारी गुलामी का जीवन व्यतीत करनेवाली निरपराध देवियाँ हैं जैसे उनकी भूलोक-वासिनी मुसलमान बहिनें। भेद है तो केवल इतना कि उनकी भूलोक-वासिनी बहिनों को केवल तीन सपत्नियों का दुःख भोगना पड़ता है और यदि पति निर्धन हो तो उससे भी बच जाती हैं, पर इन ग़रीब स्वर्ग की हूरों को अवश्य ७१ सपत्नियों का दुःख भोगना पड़ता है। उन का किसी प्रकार छुटकारा नहीं। इससे अधिक भेद सूक्त की व्याख्या में स्पष्ट हो जायगा।

इस सूक्त में स्वर्ग के नाम से दूसरे स्वर्ग गृहस्थाश्रम का वर्णन किया है। इस गृहस्थ के व्रत का दूसरा नाम 'विष्टारियज्ञ' लिखा गया है। गृहस्थाश्रम का नाम विष्टारियज्ञ इसलिये है कि ब्रह्मचर्य्य संग्रह का आश्रम है और गृहस्थ विस्तार का। विस्तारी का ही रूपान्तर विष्टारी हो गया है। वेद में विस्तार शब्द के स के स्थान में ष का प्रयोग देखने में आता है। 'विष्टार पंक्ति छन्द' छन्दोनाम्नि च (पाणिनीय ८।३।९४।।) इस सूत्र का उदाहरण है।

दूसरा प्रमाण इस यज्ञ के गृहस्थ व्रत होने का यह है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ इस की उत्पत्ति तप से बताई गई है। वेद में यहां इस प्रकार का अलंकार बाँधा गया है कि गृहस्थाश्रमरूपी एक पत्ती है जो ब्रह्मचर्याश्रमरूपी अण्डे में परिपाक को प्राप्त होता है। जब अण्डा अपने नियत समय पर परिपक्क हो जाता तब यह उसे फोड़ कर निकलता है। यह 'ओदन' है अर्थात संसार को रस से आर्द्र करने वाला है। जिस प्रकार मनुष्यों के शरीर को नवीन शक्ति से सींचने के लिये भात पहले पकाया जाता है उसी प्रकार यह ब्रह्मचर्याश्रम में पकता है। भेद केवल इतना है कि ब्रह्मचर्यश्रम में इसका नाम 'ब्रह्मौदन' है और गृहस्थाश्रम में 'विष्टारी ओदन।' अथर्ववेद में भी विष्टारीयज्ञ की परिपक्वावस्था के आनन्द का वर्णन करके साथ ही अगले सूक्त में वह परिपक्वावस्था कैसे प्राप्त होती है इस निमित्त से ब्रह्मचर्य की महिमा का गान किया है। यदि हम यह पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध कर सकें कि पैतीसवें सूक्तमें 'ब्रह्मौदन' के नाम से ब्रह्मचर्यव्रत का वर्णन किया गया है तो हमारी चौंतीसवें सूक्त में वर्णित विष्टारीयज्ञ अथवा विष्टारी ओदन के गृहस्थ-व्रत का पर्य्यायवाची होने सम्बन्धी स्थापना और अधिक पुष्ट हो जायगी। इसलिये हम चौंतीसवें सूक्त की व्याख्या न करके पहले पैतीसवें की करते हैं।

भक्त परमेश्वर से प्रार्थना करता है :—

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य
प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात्
तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥
अ० ४ । ३५ । १ ॥

(यम्) जिस (ओदनम्) भात को (प्रथमजाः) आदियुग में होने वाले (प्रजापतिः) प्रजापति ने, आदियुग में जो प्रथम ब्रह्मचारी हुए उनके लिये जातिवाची एक वचन है (तपसा) तप से (ब्रह्मणे) विद्या प्राप्ति के लिये अथवा परमेश्वर को अर्पण करने के लिये, सच्चे ब्रह्मचारी के पास प्रभु को भेंट करने के लिये उसका सुरक्षित ब्रह्मचर्य ही सब से अच्छा उपहार है (अपचत्) परिपाक तक पहुंचाया (यः) जो (लोकानाम्) गृहस्थादि अन्य सब आश्रमों का (विधृतिः) आधार स्तम्भ है वह (न + अभिरेषात्) ईश्वर की कृपा से भंग न हो (तेन) उस (ओदनेन) जीवन यात्रा के पाथेय-भूत ब्रह्मचर्यरूपी ओदन से मैं (मृत्युम्) मौत को (अतितराणि) पार कर जाऊँ ऐसी कृपा प्रभु मुझ पर करें ।१।

येनातरन् भूतकृतोतिमृत्युं
यमन्वविन्दन् तपसा श्रमेण ।
यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं
तेनौदनेनातितराणि मृत्युम् ॥
अ० ४ । ३५ । २ ॥

(येन) जिससे (भूतकृतः) संसार का व्यवहार करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले प्राणधारी (मृत्युम्) मौत को (अतरन्) पार कर गये अर्थात् पार करते हैं (यम्) जिसको (तपसा श्रमेण) तप और मेहनत से (अन्वविन्दन्) तप करने के पीछे प्राप्त करते हैं (यम्) जिसको (पूर्व) सब से मुख्य (ब्रह्म) ईश्वर ने (ब्राह्मणे) अपने ज्ञान वेद की रक्षा के लिये (पपाच) पक्व करके ज्ञान रूप से ऋषियों को दिया । (तेनौदनेन०) उस जीवन यात्रा के पाथेय० । २ ।

यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं
यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन ।
यो अस्तभ्नाद् दिवमूर्ध्वो महिम्ना
तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥

अ० ४ । ३५ । ३ ॥

जो जीवन-यात्रा का पाथेयभूत ब्रह्मचर्य्य व्रत (पृथिवीम्) ब्रह्मचर्य्याश्रम को अथवा अलङ्कार-रूपेण इस पृथिवी को, इसकी विशेष व्याख्या ब्रह्मचर्य्यसूक्त में मिलेगी (दाधार) धारण करता है और जो (अन्तरिक्षम्) गृहस्थाश्रम को अथवा अन्तरिक्ष को (रसेन) रस से (आपृणात्) परिपूर्ण करता है (यः) जो (ऊर्ध्वः) ऊपर तक पहुँच कर (दिवम्) वानप्रस्थाश्रम को अथवा सूर्यलोक को (महिम्ना) अपनी महिमा से (अस्तभ्नात्) थामे हुए है (ते न०) उस से० । ३ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥

(अथर्व ११ काण्ड अनुवाक ३ सू० ५ मन्त्र २०)

इस मन्त्र में अलङ्कार से चराचर विश्व के सब पदार्थों को परमेश्वर की आज्ञा के व्रतचारी होने के कारण ब्रह्मचारी कहा है। पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ, तीनों में ब्रह्मचर्य्य का प्रताप दीख रहा है, यह भाव दिखाया गया है । इसलिये पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौः का स्थूल लोक-प्रसिद्ध अर्थ लेने से भी अर्थ में कुछ हानि नहीं आती । हाँ, प्रश्नोपनिषन्निर्दिष्ट ब्रह्मचर्य्यादि आश्रम ऐसा अर्थ लेने से एक विशेष चमत्कार उत्पन्न होजाता है । जिस प्रकार ब्रह्मचारी युक्ताहार-विहारशील होता है और उसका जीवन मर्य्यादा में बँधा हुआ होता है इसी प्रकार मानो दिनों ने और मासों ने भी ब्रह्मचर्य्य की दीक्षा ली है । इसीलिये मास ३० दिन के चक्र में और संवत्सर १२ मास के चक्र में नियम से घूमता है। इन दिन-रात के चक्र से भी उसकी महिमा का एक अंश मर्य्यादा पालन ही प्रकट होता है । वह भी उसकी महिमा को पूरा नहीं दिखा सकते । यह भाव अगले मन्त्र में दिखाया गया है ।

यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः
संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः ।
अहोरात्रा यं परियन्तो नापु-
स्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥

अ० ४ । ३५ । ४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यस्मात्) जिस ब्रह्मचर्य्य व्रत के अभ्यास से (मासाः) महीने (त्रिंशदराः) तीस दिनों के अथवा मासचक्र ३० अरों का है (निर्मिताः) बने हैं (यस्मात्) जिस से (संवत्सरः) वर्ष (द्वादशारः) १२ अरों का (निर्मितः) बना है (अहोरात्राः) चक्कर करते हुए (यम्) जिसको (नापुः) नहीं पहुँच सकते हैं (तेनौदनेन) उस० । ४ ।

यः प्राणदः प्राणदवान् बभूव
यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति ।
ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वा-
स्तेनौदनेनातितराणि मृत्युम् ॥
अ० ४ । ३५ । ५ ॥

(यः) जो (प्राणदः) प्राणदाता तथा (प्राणदवान्) प्राणदाता ब्रह्मचारियों वाला (बभूव) है (यस्मै) जिसके लिये (घृतवन्तः) स्नेहाभिषिक्त (लोकाः) मनुष्य अथवा स्थान (क्षरन्ति) स्नेह बरसाते हैं (यस्य) जिसकी (सर्व्वाः) सब (प्रदिशः) दिशा प्रदिशा (ज्योतिष्मतीः) तेजोमयी हैं (तेनौदनेन) उस० । ५ ।

यस्मात् पक्वादमृतं सम्बभूव
यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव ।
यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपा-
स्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥
अ० ४ । ३५ । ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यस्मात् पकात्) जिस ब्रह्मचर्य्य व्रत के परिपक्क होजाने से (अमृतम्) मृत्युञ्जय आनन्द (सम्बभूव) उत्पन्न होता है (यो) जो (गायत्र्याः) गायत्री मन्त्र का (अधिपतिः) रक्षक (बभूव) है (यस्मिन्) जिस पर (विश्वरूपाः) सब विद्याओं का निरूपण करने वाले (वेदाः) चारों वेद (निहिताः) आश्रित हैं अथवा जिसमें रक्खे हैं (तेनौदनेन) उस० । ६ ।

अव बाधे द्विषन्तं देवपीयुं
सपत्ना ये मेप ते भवन्तु ।
ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि
शृण्वन्तु मे श्रद्धानस्य देवाः ॥
अ० ४ । ३५ । ७ ॥

(देवपीयुम्) विद्वानों को पीड़ा देने वाले (द्विषन्तम्) द्वेषयुक्त शत्रु को (अवबाधे) रोकता हूँ (ये) जो (मे) मेरे (सपत्नाः) अधःपतन के कारण-भूत शत्रु लोग हैं (ते) वह (अप भवन्तु) मुझ से दूर ही रहें (विश्वजितम्) संपूर्ण विश्व के विजय में समर्थ इस (ब्रह्मौदनम्) ब्रह्मचर्य्य व्रत रूप ओदन को मैं (पचामि) पकाता हूँ (देवाः) साक्षिभूत विद्वान् लोग (श्रद्धानस्य) श्रद्धा से भरे हुए (मे) मेरे इस आवेदन को (शृण्वन्तु) सुनें । ७ ।

यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है । ११वें काण्ड में जो ब्रह्मचर्य्य-सूक्त आया है उसमें और इस सूक्त में एक सोदर्य्यभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पष्ट दीखता है। हम दोनों सूक्तों के कुछ शब्द आमने-सामने रख देते हैं जिनसे यह बात स्पष्ट हो जायगी:—

ब्रह्मौदन सूक्त (चतुर्थ काण्ड ३५ सूक्त)	ब्रह्मचर्य सूक्त (११ काण्ड ५ सूक्त)
१. प्रथमजाः प्रजापतिस्तपसेऽपचत् ।१।	१. पूर्व्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्म्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत् ॥५॥
२. यमन्वविन्दन् तपसा श्रमेण ॥२॥	२. ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकाँस्तपसा पिपर्ति ॥२॥
३. यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसम् यो अस्तम्नाद्दिवम् ॥३॥	३. स दाधार पृथिवीं दिवञ्च ॥९॥
४. यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः ॥४॥	४. अहोरात्रे संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाताः ब्रह्मचारिणः ॥२०॥
५. यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति ॥५॥	५. अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्य्यः।१५
६. यस्मात् पक्वादमृतं सम्बभूव	६. ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ॥१६॥ सर्व्वे अमृतेन साकम् ॥२३॥
७. यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव	७. आचार्य्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ॥३॥
८. यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपाः।६।	८. जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठम् ॥२३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचारी और ब्रह्मौदनचारी में वैसे भी बहुत भेद नहीं है।

हम समझते हैं कि ब्रह्मौदन सूक्त के लगभग सब ही मन्त्र कुछ रूपान्तर से ब्रह्मचर्य्य सूक्त में आगये हैं। ऊपर के उदाहरण इतने स्पष्ट हैं कि उन पर अधिक टिप्पणी की विशेष आवश्यकता नहीं, विशेषकर 'तपसा श्रमेण' यह दो शब्द तो सारे ही वैदिक-साहित्य में ब्रह्मचर्य्य-महारथी की रथ-पताका पर लिखे दूर से पहिचाने जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

8930

द्वितीय स्वर्ग

इस प्रकार ब्रह्मौदन सूक्त की व्याख्या करके अब हम विष्टारी ओदन की ओर आते हैं। ब्रह्मौदन-अवस्था एक अण्डे की अथवा कच्ची मिट्टी के खिलौने की थी। अब तप द्वारा परिपाक होने के कारण यह अण्डा फूट पड़ा, (क्या अच्छी समासोक्ति है!)। उस में से गृहस्थ-व्रत अथवा विष्टारी ओदन रूप पक्षी निकल पड़ा। उसका स्वरूप कितना सुन्दर है! मानों सारा साम-गान इसमें इकट्ठा हो गया। सचमुच गृहस्थाश्रम सम्पूर्ण सामगानों का सार है। क्या पति ने पत्नी से विवाह के दिन नहीं कहा था कि ऋक् त्वं सामाहं? क्या छान्दोग्यकार ने इसी श्रुति के तात्पर्य को द्वितीयाध्याय त्रयोदश खण्ड में स्पष्ट नहीं किया?—

उपमंत्रयते स हिंकारो ज्ञपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रति स्त्री सह शेते स प्रतिहारः कालं गच्छति तन्निधनम्।

इसमें—हिङ्कार (राग स्वरूप निदर्शन) प्रस्ताव (आरम्भिक आलाप) उद्गीथ (स्थायी) प्रतिहार (अन्तरा) निधन (समाप्ति)—राग के सभी अङ्ग गर्भाधान में दिखाये गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। साथ ही कहा गया है कि जब कभी भी कोई इस विद्या के जानने वाले के पास उपदेशार्थी होकर आए तो धनादि के लोभ से उसे टाले नहीं। इसका नाम वामदेव व्रत कहा गया है।

अथर्व की श्रुति कहती है कि ब्रह्मौदन परिपाक का फल स्वरूप यह विष्टारी ओदन तुम्हें मिला है। यह अपने पंखों को फैला कर उड़ा जाता है और तुम्हें जीवनयात्रा में व्योमयानविहार का आनन्द देगा।

जो मनुष्य सच्चे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है उसका वाहन अद्भुत है। हमने मयूरवाहन सुने, हंसवाहन सुने, मूषक-वाहन भी सुने, गरुड़वाहन भी सुने, परन्तु भगवान् वेद की कृपा से गीतिवाहन के भी दर्शन कर लीजिये। हर एक सच्चा गृहस्थ गीतिवाहन है। सम्पूर्ण संसार के सुन्दर गीत-मार्गों के बने पक्षी पर चढ़ कर जीवन यात्रा से जो आनन्द प्राप्त हो वह उसे प्राप्त है। क्या सुन्दर, क्या मीठी कल्पना है! मैं तो इस कल्पना पर ही बलिहारी हूँ।

ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं
वामदेव्यमुदरमोदनस्य ।
छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं
विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः ॥

अथ० ४ । ३४ । १ ॥

ब्रह्मसाम (एक सामगान का प्रकार) उसका सिर है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहत् (विलम्बित लय में गाने का प्रकार विशेष) उसकी पीठ है, वामदेव्य (गीति का तीसरा प्रकार) उदर है, सम्पूर्ण छन्द कला के सौन्दर्य्य के बने पंख हैं। और मुख ? वह तो वैदिक आदर्श की पराकाष्ठा है। मुख सत्य है। इस मधुर वाहन पर चढ़ कर भी वह जा रहा है उसकी ओर (उसका रुख वहीं है) जहाँ सत्य ले जावे। इसमें किस-किस शब्द की दाद दें, किस-किस मंत्र पर वाह-वाह कहें ?

यह गीति-प्रकार-विशेष यदृच्छया ही सिर, पीठ, उदर और पंख नहीं बना दिये गये हैं। इन में से एक-एक पद की व्यञ्जना निराली है।

सिर 'ब्रह्म' है। वह गृहस्थ क्या जिसका सिर प्रभु नहीं, जो अपना पूज्यतम ब्रह्म को नहीं मानता ? जब से हमारे गृहस्थ प्रतिमाशीर्ष अथवा उससे भी गिरकर भोगशीर्ष हो गये हैं तब से ही हमारा अधःपतन हुआ।

उसकी पीठ बड़ी है। इसीलिये विलम्बित लय का 'बृहत्' साम यहाँ रक्खा गया है। जिस के घर में अतिथि का भोजन नहीं है, जिसकी पीठ इतनी दुर्बल है, उसने गृहस्थ का भार क्यों उठाया ? इसे तो भारी पीठ वाला ही उठाये, नहीं तो स्वयं भूभार हो जायगा।

अब आइये उदर की ओर। यहाँ 'वामादेवी' का राज्य है। मैं नहीं कहता भगवान् नववधू को आशीर्वाद देते हुए स्वयं कहते हैं:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्राज्ञ्यधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु
ननान्दुः सम्राज्ञ्यधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ।

अर्थात् श्वशुर, देवर, ननन्द, सास सबकी सम्राज्ञी बन। कवि भी कह गया है—

नाथेति परुषवचनं प्रियेतिदासेत्यनुग्रहो यत्र ।
तद्दाम्पत्यमितोऽन्यन्नारी रज्जुः पशुः पुरुषः ॥

परन्तु यह न समझ लिया जाय कि यह राज्य कामातुरों का निर्लज्ज राज्य है। मदनमातङ्ग के विनयन के लिये ब्रह्मास्य शीर्षं, मुखमस्य सत्यम् और तपसोऽधिजातः के तीन तीक्ष्णाग्र अंकुश पहले ही रक्खे हुए हैं। यही वेद के शृङ्गार रस में और लौकिक कवियों के शृङ्गार विष में भेद है। हाँ, कभी-कभी उनमें भी परमकवि की ज्योति चमक उठती है। क्या ही अच्छा होता कि वे सदा याद रखते कि सच्चा गृहस्थ रानी का राज्य है तो सही परन्तु वहाँ की प्रजा "क्रीता तपोभिः" (कुमार सम्भव) है न कि 'कटाक्षैः।'

उद्दर 'वामदेव्य' साम है। यह वह संगीत-प्रकार है जो सब सामगानों में श्रेष्ठ है। इसीलिये सब मङ्गल-अवसरों पर गाया जाता है। और इसी के अविष्कार के कारण कदाचित् वामदेव ऋषि को वामदेव नाम प्राप्त हुआ था। परन्तु यह न भूलिये कि यह पक्षी "तपसोऽधिजातः" अर्थात् तप से पैदा हुआ है। जो इस "गृहस्थाश्रम व्रत," इस "विष्टारी यज्ञ रूप," पक्षी पर आरूढ़ हुआ वह स्वर्ग में पहुंच गया। आगे द्यौः में और उससे परे भी पहुँचेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्टारी नाम की व्याख्या पहिले ही कर आये हैं। प्रथमाश्रम संग्रह का आश्रम था, अब विस्तार का आश्रम है। याद रखना विस्तार का न कि अपव्यय का। यही बात तो श्रुति से दुहकर मनु ने भी कही है:—

यथा नदीनदाः सर्व्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।

अब इस प्रकार तप पूर्वक गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का फल क्या होता है सो अगले मन्त्र में सुनिये:—

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः
शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः
स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम्॥

अथ० ४। ३४। २

(अनस्थाः) जिनकी हड्डियाँ नहीं दीख रहीं अर्थात जिनकी देह मांसल है जो कङ्काल-मात्रा-वशेष नहीं हैं (पूताः) बाहर से पवित्र (पवनेन शुद्धः) व्यायाम प्राणायामादि द्वारा अन्दर से भी पवन द्वारा शुद्ध हुए-हुए (शुचयः) उज्वल लोग ही इस (शुचिम्) पवित्र (लोकम्) आश्रम में (अपियन्ति) प्रविष्ट होते हैं अर्थात् होने के अधिकारी हैं। इस प्रकार तप से पवित्र होकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का फल यह होता है कि यद्यपि (स्वर्गे लोके) परम सुख की ओर ले जाने वाले गृहस्थाश्रम में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एषाम्) इन सद्गृहस्थों का (स्त्रैणं) स्त्रीवर्ग (बहु) बहुत होता है अर्थात् वह चारों ओर पड़ोसियों की लड़कियां, युवती पत्नियां, निकट-बन्धुओं की लड़कियां आदि सब ही प्रकार की स्त्रियों से घिरे होते हैं परन्तु (एषाम्) इनके (शिश्नम्) उपस्थेन्द्रिय को (जातवेदाः) अन्तर्य्यामी परमात्मा कामाग्नि अथवा रोगाग्नि से [न] नहीं (प्रदहति) दग्ध करता है ।२।

अब आपने समझा स्वर्गलोक का लक्षण । जहां चारों ओर स्त्रियें स्वच्छन्द घूमती हों परन्तु पुरुषों के उपस्थ में कामजन्य दाह न हो वह गृस्थाश्रम स्वर्ग है ।

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति
नैनानवर्तिः सचते कदाचन ।
आस्ते यम उपयाति देवान्
संगन्धर्वैर्मदन्ते सोम्येभिः ॥
अथ० ४ । ३४ । ३ ॥

(विष्टारिणम् ओदनम्) गृहस्थाश्रम रूप विस्तार करने वाले ओदन को (ये) जो (पचन्ति) परिपाक तक पहुँचाते हैं (एनान्) उन्हें (अवर्तिः) घाटा (कदाचन) कभी नहीं (सचते) प्राप्त होता । वह विष्टारी ओदन का पाक करने वाला अर्थात् गृहस्थाश्रम के व्रतों का अभ्यास करने वाला सदा (यमे) संयम में अथवा न्यायकारी परमात्मा की आज्ञा में (आस्ते) रहता है (देवान्) देवपदवी को (उपयाति) प्राप्त होता है (सोम्येभिः) वीर्य्यवान्,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रेतो वै सोमः' शतपथ १।९।२।९ (गन्धर्वैः) रसभरे नौजवानों के साथ 'युवानः शोभना गन्धर्वाः' शतपथ १३।४।३ ७ (सम्मदते) अपूर्व आन्द को प्राप्त होता है ।३।

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति
नैनान् यमः परि मुष्णाति रेतः ।
रथी ह भूत्वा रथयान ईयते
पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति ॥

अथ० ४ । ३४ । ४ ॥

(विष्टारिणम् ओदनम्) इस गृहस्थाश्रम के व्रतरूप ओदन को (ये) जो (पचन्ति) परिपाक तक पहुँचाते हैं [यमः] काल अथवा प्रभु का नियम [एनान्] इनके [रेतः] वीर्य्य को (न) नहीं (परिमुष्णाति) छीनता अर्थात् वृद्धावस्था में भी वह क्षीणवीर्य्य न हो कर वानप्रस्थादि आश्रमों को सुख पूर्वक पाल सकते हैं । यहाँ 'मुष्' धातु द्विकर्म्मक रूप से आई है ; जैसे 'गां दोग्धि पयः', परन्तु भाषा में उसका अनुवाद षष्ठी से ही करना पड़ा है । वह विष्टारी ओदन को परिपाक तक पहुँचाने वाला गृहस्थ के मार्ग में [ह] निश्चय से [रथी] गृहस्थ क्षेत्र का महारथी [भूत्वा] हो कर [रथयानः] रथारूढ़ [ईयते] यात्रा करता है मानों किसी उत्तम रथ पर चढ़ा हो (ह) निश्चय से [पक्षी] पंखों वाला, गीतिवाहन [भूत्वा] हो कर [दिवः] वानप्रस्थाश्रम से [अति] परे [समेति] पहुँचता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् व्रत का अभ्यास द्वारा परिपाक करके गृहस्थ भोगने वालों की सम्पूर्ण शक्ति गृहस्थ में ही समाप्त नहीं होजाती, किन्तु जिस मनोमय रथ पर चढ़ कर दम्पती ने इस आश्रम में प्रवेश किया था [अथर्व १४.१।१०] उसका साथ शरीर भी देता है, और वह वानप्रस्थाश्रम का काल व्यतीत करने के पीछे उस से परे संन्यास आश्रम में भी जाने के योग्य होते हैं। और जिन का तेल गृहस्थ में ही चुक जाता है उनका रथ वानप्रस्थ में भी कैसे जायगा, संन्यास की तो बात ही क्या पूछनी है।४।

इन दो मंत्रों में वेद ने सारे सूक्त का तत्त्व खोल दिया है। जो नियमपूर्वक गृहस्थाश्रम में चलते हैं उन्हें घाटा किसी प्रकार का नहीं। उनके चारों ओर स्त्रियें हैं परन्तु उनका आत्म-संयम दिखाने के लिये। उनके चारों ओर अन्न है, घृत है, परन्तु अजीर्ण नहीं। भोग है परन्तु रोग नहीं, स्त्रियें ही नहीं, पत्नी है, परन्तु वीर्यनाश नहीं। यह पंक्ति यहाँ उपलक्षण मात्र है। इसी प्रकार सब पदार्थों पर यही नियम लगा लीजिये।

एष यज्ञानां विततो बहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमाविवेश। आण्डीकं कुमुदं संतनोति बिसं शालूकं शफको मुलाली। एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः॥

अथ० ४। ३४। ५

(एषः) यह विष्टारी यज्ञ (यज्ञानां) सब यज्ञों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(बर्हिष्ठः) समृद्धत्तम है 'बर्हि वृद्धौ' (विष्टारिणम्) इस गृहस्थाश्रम के व्रत को (पक्त्वा) पूर्ण परिपाक तक पहुँचाने के अनन्तर यह परिपाक कर्त्ता (दिवम्) वानप्रस्थाश्रम में (आविवेश) प्रवेश करता है। और जब तक इस गृहस्थ में रहता है तब तक (आण्डीकम्) अण्डाकार नाभि वाले फूल को (कुमुदम्) रात में खिलने वाले कमल को (बिसम्) कमलनाल को (शालूकम्) कमल के कन्द को (शफकं) गोशफाकृति पुष्प को (मुलाली) कोमल मृणालिकाओं को (सन्तनोति) विस्तार करता है।

हे इस नियम के पालन करने वाले गृहस्थ! प्रभु की कृपा से तेरे पास चारों ओर इस प्रकार की नाना पुष्प विभूषित (पुष्करिणीः) जलवापियां (उपतिष्ठन्तु) उपस्थित रहा करें।

तुझे (स्वर्गे) परम सुख तक जाने वाले (लोके) इस गृहस्थ धाम में (मधुमत्) उत्तम सुख दान पूर्व्वक (पिन्वमाना) तेरी शारीरिक तथा मानसिक उन्नति करती हुई (एताः) यह (सर्वाः) सब (धाराः) धाराएँ अर्थात् जिनसे नाना प्रकार के फूल खिलते हैं वह उत्तम जल धाराएँ (उपयन्तु) प्राप्त हों। ५।

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना। एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः॥

अथ० ४।३४।६॥

केवल साधारण जल धाराएँ नहीं किन्तु (सुरोदकाः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरम्य अद्भुत जल वाली अन्य धाराएँ भी (घृतह्रदाः) जिनके मार्ग में घी की झीलें लगी हों (मधुकूलाः) जिनके किनारे मधु के बने हों (क्षीरेण) दूध से (उदकेन) पानी से (दध्ना) दही से (पूर्णाः) भरी हुई। यह सब जल धाराएँ।६।

यहाँ कई लोग 'सुरोदकाः' का अर्थ 'मद्य है जल जिनका' ऐसा करते हैं। किन्तु यह अर्थ युक्तिसङ्गत नहीं। क्योंकि नदी में जल क्या है यह वेद ने स्वयं ही बता दिया है। वह है क्षीर, उदक, और दही। इन धाराओं में ही घी की झीलें बन सकती हैं। शराब की नदी में घी के तालाब कैसे लग सकेंगे यह बात इन विचित्र-मति भाष्य-कारों ने नहीं सोची। हाँ, दूध की धारा में और जल मिश्रित दही की धारा में घृतह्रद अवश्य लग सकते हैं। इस लिये यहाँ 'सुरोदकाः' का अर्थ 'मनोहरोदकाः' अर्थात् 'लोकोत्तरोदकाः' ऐसा करना चाहिये और 'क्षीरेण पूर्णान् उदकेन दध्ना' यह तीनों उसकी व्याख्या हैं। परन्तु यदि इन भाष्यकारों का अर्थ दुर्जन-तोष न्याय से मान भी लें तब भी कोई क्षति नहीं आती। वेद कहता है कि उत्तम गृहस्थों को किसी प्रकार का घाटा नहीं रहता है। जब चाहें स्नान के लिये जल की धाराएँ उपस्थित हो जाती हैं। जब औषध निर्माण वा दीपक आदि जलाने के लिये सुरा की आवश्यकता हो तो सुरा की नदियाँ बहा सकते हैं। जब चाहें दूध दही की नदियाँ उनके पास उपस्थित हो जाती हैं। किन्तु क्योंकि उन्होंने 'शुचि' होकर इस 'शुचि लोक', इस पवित्र आश्रम में प्रवेश किया है तो वह इन पदार्थों का निषिद्ध उपयोग नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते, यह ओदन पैदा ही तप से हुआ है (तपसोऽधिजातः)।

चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा दधामि क्षीरेण पूर्णान् उदकेन दध्ना। एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः॥

अथ० ४। ३४। ७॥

मैं (क्षीरेण) दूध से (पूर्णान्) भरे हुए (चतुरः) चार (कुम्भान्) घड़ों को (चतुर्धा) घर के चारों कोनों पर (दधामि) रखता हूँ और इसी प्रकार (उदकेन) जल से (दध्ना) दही से भरे हुए चार घड़ों को।७।

इस दूसरे मन्त्र से हमारा पक्ष और भी पुष्ट हो जाता है। यहाँ सुरा-कुम्भ का कहीं वर्णन नहीं है। तात्पर्य्य यह है कि एक सच्चे गृहस्थ का घर धनधान्य पूर्ण, घी-दूध से भरा, उत्तम उद्यान युक्त तथा सब से पहिले तप, सत्य, मानसिक आनन्द और संयम से युक्त होना चाहिये। इन सब में सत्य मुख्य है। इस लिये उसको मुख्य स्थान मिला है।

यजमान कहता है—

इममोदनं निदधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम्। स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु॥

अथ०। ४। ३४। ८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इमम्) इस (विष्टारिणम्) विस्तार करने वाले (लोकजितम्) वानप्रस्थादि आश्रमान्तरों को जीतने अर्थात् प्राप्त कराने वाले (स्वर्गम्) परम सुख की ओर ले जाने वाले (ओदनम्) जीवन-यात्रा के पाथेय रूप व्रत को मैं (ब्राह्मणेषु) ब्राह्मणों के हाथों में (निदधे) परम निधिरूपेण निक्षिप्त करता हूँ, उनके अर्पण करता हूँ।

(स्वधया) अन्न से (पिन्वमानः) पुष्टि को प्राप्त होता हुआ (मे) मेरा खज़ाना (मा क्षेष्ट) कहीं क्षीण न होने पावे (विश्वरूपा) यह प्रकृतिरूप (धेनुः) गौ (मे) मेरे लिये (कामदुघा) खूब इच्छाएँ पूरी करने वाली हो। ८।

तात्पर्य्य यह कि यदि मनुष्य चाहते हैं कि उनका गृहस्था-श्रम 'स्वर्ग' अर्थात् परम सुख की ओर ले जाने वाला हो तो वह निम्न लिखित साधन करें :—

(१) ब्रह्मौदन का अर्थात् ब्रह्मचर्य्य व्रत का खूब परिपाक करें।

(२) पवित्र भावना से इस में प्रवेश करें।

(३) पदार्थों का उपयोग इस प्रकार करें कि अगले आश्रमों के लिये भी शक्ति बची रहे।

(४) घर अति सुन्दर हरियावल से युक्त हों।

(५) धन-धान्य तथा घी-दूध की उनके घर में नदियाँ बहती हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) ब्राह्मणों का अन्नादि से सदा पालन करें।

(७) ब्राह्मण शेष वर्णों के प्रति अतिवत्सल हों।

(८) ब्राह्मण प्रकृति के नए-नए तत्व खोजकर प्रजा को बताएँ जिससे जहाँ दूध, जल, दधि, घी आदि दुर्लभ हों वहाँ भी उनकी धाराएँ (उपतिष्ठन्तु) उपस्थित हो जावें।

यह है वेद का स्वर्ग!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय स्वर्ग

दो नाकों का वर्णन हो चुका। अब हम 'तीसरे नाक' अर्थात 'वानप्रस्थ' का वर्णन अथर्व वेद नवम काण्ड ५ सूक्त से उपस्थित करते हैं प्रथम मन्त्र इस प्रकार है :—

आनयैतमारभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन्। तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमाक्रमतां तृतीयम्॥

(अथर्व० ९।५।१)

वानप्रस्थ में प्रवेशार्थी की ओर निर्देश करके [जिस महात्मा की सङ्गति में रह कर उसने वानप्रस्थ धर्म निर्वाह का निश्चय किया है उसे सम्बोधन करके यज्ञकर्ता अध्वर्य्यु कहता है— हे! महात्मन् तू (एतम्) इसे गृहस्थाश्रम से वानप्रस्थाश्रम में (आनय) ले आ और (आरभस्व) इसे फिर नए सिरे से घड़ना शुरू कर, इसे (Overhaul) कर। जिस से यह (अजः) नित्य गमन शील अथवा अजन्मा जीवात्मा (बहुधा) अनेक प्रकार से (महान्ति) बड़े बड़े (तमांसि) अन्धकारों को (तीर्त्वा) पार करके (प्रजानन्) अनेक प्रकार के प्रज्ञान से युक्त होता हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तृतीयम्) तीसरे (नाकम्) स्वर्ग को (आक्रमताम्) ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थादि क्रम से प्राप्त हो और (सुकृताम्) पुण्यात्माओं के (लोकम्) लोक संन्यास तथा मोक्षादि को (अपि) भी (गच्छतु) प्राप्त हो।

यहां विचारणीय विषय है कि यह 'अज' कौन है। पौराणिक भाष्यकार तो लिखते हैं—'अस्मिन् सूक्ते पञ्चौदने नाम सवे हूयमानस्याजस्य जीवतो मारितस्य च प्रशंसा'।। अर्थात् इस सूक्त में पञ्चौदन नामक सव में आहुति किए जाने वाले बकरे की जीती अवस्था की और मारे हुए की दोनों अवस्थाओं की प्रशंसा है। अब सब से पहिले यही निर्णय करना है कि क्या सूक्त की अन्य साक्षी से यह किसी प्रकार भी बकरा हो सकता है।

इसका निर्णय करने के लिए निम्नलिखित पदों तथा वाक्यों की ओर ध्यान देना चाहिये—

(१) आरभस्व
(२) तमांसि तीर्त्वा
(३) प्रजानन्
(४) सूरिम्
(५) यद्दुश्चरितं चचार (तत्) प्रपदः अवनेनिग्धि।
(६) उत्क्रामातः यदिचेदतप्तः
(७) अजः अग्निः
(८) अजमुज्ज्योतिराहुः
(९) अजस्तमांस्यपहन्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१०) एतद्वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं

(११) अजोह्यग्नेरजनिष्यष्ट शोकाद् विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित् ।

साथ ही चतुर्थ कारड १६ सूक्त में इसके साथ ‘ सुपर्णम् ’ विशेषण भी है । अब इन विशेषणों की आलोचना करके देखना चाहिए कि क्या इनसे ‘अज’ का अर्थ ‘बकरा’ सिद्ध होता है। पहिले ‘आरभस्व’ को लीजिये, ‘आरभस्व’ का अर्थ है घड़ना, बनाना। किसी जीवधारी के लिए यह शब्द प्रयुक्त नहीं हो सकते। उसके लिए तो ‘जनय, उत्पादय’ यही शब्द प्रयुक्त होंगे । इस लिए अज बकरा नहीं हो सकता । दूसरा वाक्य है ‘तमांसि तीर्त्वा’ अर्थात् तमोगुण को पार करके । सो बकरा तमोगुण को कैसे पार करेगा ? यह शब्द तो मनुष्य के लिए हो सकता है। फिर ‘प्रजानन्’ का अर्थ है उत्तम ज्ञान युक्त होता हुआ, सो बकरे को क्या पढ़ाएँगे, व्याकरण,न्याय, साहित्य अथवा वेदान्त? फिर ‘सूरिम्’ विशेषण को लीजिए। इसका अर्थ है पण्डित, विद्वान्। सो यह विशेषण किस बकरे में सङ्गत होगा ? आगे चलिये ‘यद् दुश्चरितं चचार (तत्) प्रपदः अवनेनिग्धि,’ इसने यदि कहीं दुश्चरित किया है तो आज अपने पैर धोता है। यह दुश्चरित का तमो-नाश द्वारा क्षालन, यह मलापवर्जन मनुष्य के अतिरिक्त किसमें सम्भव है ? आगे कहा है—यदि तू ‘तप्त नहीं तो यहां से तप्त होकर उठ।’ यह तप करना और उठना बकरे में सम्भव नहीं फिर वह भी काटे हुए बकरे में। आगे उसे अग्नि कहा है। फिर कहीं कोई भौतिक अग्नि न समझ ले इसलिये कहा है ‘अजमुज्ज्योतिराहुः’—जाननेवाले उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिः स्वरूप कहते हैं। फिर आगे और भी स्पष्ट कर दिया है, वह 'विपश्चित् विप्रः विप्रस्य अग्नेः सहसः शोकाद् अजनिष्ट' विद्वान् मेधावी अज मेधावी विद्वान् रूप अग्नि के पापाघातसह चमत्कार से उत्पन्न हुआ है। और इसी लिये 'तमांस्यपहन्ति' अर्थात् अन्धकार का नाश करता है। फिर कहा है—हे पितरो! यह तुम्हारी तृतीय ज्योति है। पितरों का वानप्रस्थ से सम्बन्ध पहिले दिखा चुके हैं। यहाँ केवल इतना स्मरण दिलाते हैं कि 'स्थविराः पितरः' (शतपथ, त्रयोदश काण्ड)। फिर चतुर्थ काण्ड में उसे 'सुपर्णम्' कहा है अर्थात् वह पङ्ख लगा कर उड़ता है। इस उड़ने का वर्णन आप 'रथी ह भूत्वा रथयान ईयते पक्षी ह भूत्वातिदिवः समेति' में सुन चुके हैं। परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि इस सूक्त में बकरा वा उसके वध का गन्ध भी नहीं है। इस सूक्त में निम्न वाक्य बकरा तथा उसके वध के प्रतिपादन के आधार हो सकते हैं:—

(१) शुद्धैः शफैरा आक्रमताम्।

(२) अनुच्छ्य श्यामेन त्वचेमतां विशस्तर्यथा पर्व्वसिना माभिमंस्थः।

(३) माभिद्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधिविश्रयैनम्।

इनका स्थूलार्थ इस प्रकार है—

(१) यह अज अपने शुद्ध खुरों से आगे बढ़े।

(२) हे विशस्ता! इस श्याम वर्ण तलवार से तू इसकी खाल उधेड़, पोरी त्वचा से अलग कर, हिचकिचा मत।

(३) इसकी पोरी पोरी अलग कर दे और इसे तृतीय नाक में पहुँचा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न हो सकता है कि इतने स्पष्ट वध के वर्णन का विरोध कैसे किया जा सकता है। इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो इस मन्त्र में ही 'माभिद्रुहः' शब्द पड़ा हुआ है जिसका अर्थ है तू इस से द्रोह न कर—फिर भला वध से बड़ा द्रोह क्या होगा ? किन्तु आगे उतना ही स्पष्ट वर्णन वध न करने का भी है। मन्त्र २३ इस प्रकार है—

नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्ज्ञो निर्धयेत्, सर्व्वमेनं समादायेदमिदम् प्रवेशयेत् ।

न इसकी कोई हड्डी तोड़े, न मज्जा को चोट पहुँचावे, सारा वैसा का वैसा ही लेकर इस अज को इस में (संसार में) प्रविष्ट करा दे।

एक ओर 'परुशः कल्पय' की आज्ञा होती है दूसरी ओर 'सर्व्वमेनं समादाय' की यह परस्पर विरोध और घोर विरोध, अत्यधिक विरोध दीख रहा है। साथ ही खुरों का बहुवचन बकरे की ओर निर्देश कर रहा है।

अब इसका समाधान आराध्यचरण लोगों की कृपा से करते हैं। इस सूक्त में मर्म्म यह है कि अज का अर्थ तो जीवात्मा है। यह कोई नई बात नहीं है 'अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः अजो ह्येको जुषमाणोऽभिशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः, (श्वेताश्वतर ४ अध्याय ५ श्लोक) यहाँ जीवात्मा को स्पष्ट अज अर्थात् बकरे का अलङ्कार दिया गया है। फिर उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अज' अर्थात् अजन्मा जीवात्मा में बकरे का आरोप है, किन्तु जीवित बकरे का नहीं, बकरे के मिट्टी के खिलौने का आरोप है। अज की दो व्युत्पत्ति हैं। एक अजन्मा, वह तो जीवात्मा में घटती ही है। दूसरी है गति शील, सो वह यहां देहधारी जीव का निर्देश करती है। सो वह अज अर्थात् अजन्मा होता हुआ भी देहधारी होकर गति करता हुआ जीव यहां दो रूप में दिखाया गया है। 'अग्नि' और 'ज्योति' शब्दों से उसके शुद्ध स्वरूप का और 'शफैः' आदि शब्दों से देहधारी में बकरे के आरोपित रूप का वर्णन हुआ है। किन्तु यहां आरोप्य बकरा मिट्टी का यन्त्रबल से चलने वाला खिलौना है। वानप्रस्थी जिस महात्मा की सङ्गति में रहकर अपना आध्यात्मिक नवीन जन्म चाहता है उसे एक शिल्पशास्त्री बना कर कहा गया है कि इस मिट्टी के खिलौने को टुकड़े टुकड़े करके फिर नए सिरे से घड़, इसे (Overhaul) कर। इसे फिर से सर्वाङ्ग सम्पन्न करके संन्यासी बना कर संसार में ला। 'परुशः कल्पय' और 'सर्वमादाय' का विरोध दूर हो गया।

अब पूछा जा सकता है कि इसमें प्रमाण क्या? सो प्रमाण भी लीजिए। चतुर्थ काण्ड के १४ सूक्त के नवम मन्त्र में लिखा है :—

शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वैरङ्गैः सम्भृतम् विश्वरूपम्। स उत्तिष्ठेतो अभिनाकमुत्तमम् पद्भिश्चतुर्भिः प्रतितिष्ठ दिक्षु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सर्वाङ्गों से संयोजित पूर्ण रूप परिपक्व अज को परिपक्व त्वचा से ढांक। हे अज! परिपक्व होकर यहां से उत्तम नाक की ओर उठ और अपने चारों पैरों से दिशा दिशा में प्रतिष्ठा पा।

अब देखना चाहिए कि यह परिपाक किस प्रकार का है। यदि यह साधारण बकरे का टुकड़े-टुकड़े करके परिपाक हो तो उसमें तो निम्नलिखित बातें विरुद्ध पड़ती हैं :—

(१) उसमें त्वचा नहीं पकाई जाती।

(२) उसमें अंगों के पकने का अर्थ गल जाना है।

(३) कटे हुए बकरे के अंग यों भी नहीं जोड़े जा सकते फिर गले हुओं का तो कहना ही क्या।

(४) यही बात त्वचा के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

(५) यहां परिपाक से पहिले सर्वाङ्ग सम्भार का वर्णन है।

(६) फिर उसके सर्वाङ्ग सम्पन्न होकर उठने का वर्णन है।

इससे स्पष्ट है कि आगे 'ऋचा कुम्भीमग्नौ श्रयामि' इस मन्त्र में वर्णित परिपाक शिल्प शास्त्रियों का परिपाक है जिस में से परिपक्व होकर पदार्थ फिर सर्वाङ्ग सुन्दर होकर निकलता है। इस रहस्य को समझने के पश्चात् अब सारे सूक्त का अर्थ सुनिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्राय भागं परि त्वा नयाम्यस्मिन् यज्ञे यजमानाय सूरिम्। ये नो द्विषन्त्यनु तान् रभस्वानागसो यजमानस्य वीराः ॥ २ ॥

प्रथम मन्त्र का अर्थ पहिले कर ही चुके हैं। अब दूसरा मन्त्र लीजिए। हे अध्यात्म मार्ग में उठने के इच्छुक वानप्रस्थ में प्रविविक्तो (सूरिम्) विद्वान् (त्वा) तुझ को (यजमानाय) विश्व यज्ञ के यजमान (इन्द्राय) परमात्मा के लिए (भागं) भाग रूप बना कर अर्थात् अब तू स्त्री-पुत्रादि का भाग नहीं रहा (परि नयामि) चारों ओर से खींच कर ले जाता हूं। तू पहिले अपने आप को बना और (अनु) पीछे से (ये) जो (नः) हम से (द्विषन्ति) द्वेष करते हैं (तान्) उनको (रभस्व) घड़, ठीक कर जिससे (यजमानस्य) परमात्मा के अथवा राष्ट्रपति के (वीराः) वीर (अनागसः) पाप रहित हों ॥ २ ॥

प्र पदोव नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचार शुद्धैः शफैराक्रमतां प्रजानन्। तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्नजो नाकमाक्रमतां तृतीयम् ॥ ३ ॥

अब यज्ञ मण्डप में उपस्थित सब सभासदों को सम्बोधन करके तथा वानप्रस्थाश्रम में प्रविविक्त की ओर निर्देश करके अध्वर्यु कहता है—हे सज्जनो! यह अज (यत्) जो कहीं (दुश्चरितम्) दुश्चरित को (चचार) आचरण कर चुका है तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज इस वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश के समय (प्रपदः) अपने पैरों को (अवनेनिग्धि) धोता है, जिससे कि (शुद्धैः) शुद्ध (शफैः) पैरों से (प्रजानन्) प्रज्ञान युक्त होता हुआ (आक्रमताम्) क्रम पूर्वक आगे बढ़े और (बहुधा) अनेक प्रकार से सत्संग प्राणायामादि विविध उपायों से (विपश्यन्) सम्यग् दर्शन प्राप्त करता हुआ (तमांसि) दुष्ट वासना तथा दुःखादि अन्धकारों को (तीर्त्वा) पार करके (तृतीयम्) तीसरे (नाकम्) दुःखरहित वानप्रस्थाश्रम में (आक्रमताम्) क्रम पूर्वक आश्रमादाश्रम आता हुआ पैर रक्खे ॥ ३ ॥

अनुच्छ्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्वसिना माभिमंस्थाः । माभिद्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधिविश्रयैनम् ॥ ४ ॥

हे (विशस्तः) विविध प्रकार का अनुशासन करने वाले आध्यात्मिक शिल्पशास्त्रिन् ! तू (श्यामेन) अपनी उपदेश रूप तलवार से (एताम्) यह जो मल आवरण रूप इस पर चढ़ी हुई है, इस बिगड़ी हुई (त्वचम्) त्वचा को (यथा परुशः) परु परु करके (अनुच्छ्य) छील डाल (मा) मत (अभिमंस्था) सङ्कोच कर और (एनम्) इसको (परुशः) पोरी पोरी (कल्पय) कर डाल अथवा सामर्थ्य युक्त कर और इस प्रकार इस का कायाकल्प करके इसको (तृतीये) तीसरे (नाके) नाक वानप्रस्थ में (अधिविश्रय) प्रतिष्ठित कर और (मा) मत (अभिद्रुहः) द्रोह कर ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिञ्चोदकमव-धेह्येनम् । पर्याधत्ताग्निना शमितारः शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥ ५ ॥

यहां यह पूछा जा सकता है कि विशस्ता का अर्थ मैंने अनुशासन करने वाला यह कैसे किया । क्योंकि धातु पाठ में तो 'शसु हिंसायाम्' यह अर्थ दिया हुआ है । उनके प्रति हमारा कथन है कि प्रथम तो हिंसा अर्थ करने में भी हमारी कोई क्षति नहीं । क्योंकि हम तो यहाँ उसके आध्यात्मिक शरीर का तोड़कर फिर से बनाना मानते ही हैं । किन्तु फिर भी हमने विविध अनुशासन करने वाले ऐसा जो अर्थ किया है उसके निम्नलिखित आधार हैं ।

प्रथम तो इस मंत्र में ही 'माऽभिद्रुहः' तू इससे द्रोह मत कर यह हिंसा निवारक वाक्य पड़ा है । दूसरे इसमें शतपथ का भी प्रमाण है । शतपथ में इस प्रकार के वाक्य अनेक स्थलों पर आए हैं—

यत् पशुम् सञ्ज्ञपयन्ति यद्विशासति
(शतपथ २-२-२०१।३-८-२-४।११-१-२-१)

अथ पशुं विशास्ति (३-८-३-१)

तत्तं घ्नन्ति तदन्यत्रैनं यद्विशसन्ति (३-८-१-१४)

इससे स्पष्ट है कि 'विशसन्ति' और 'विशासति' पर्य्याय-वाची हैं । फिर प्रश्न हो सकता है कि 'विशसन्ति' के पीछे चला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर 'विशासति' का अर्थ 'हिंसन्ति' ऐसा क्यों न कर लें। इस पर हमारा कथन है कि एक तो वहीं कहा है 'शमितारं संशास्ति' (३-८-३-४) दूसरे ऐसा करने से तो यह वाक्य प्रमत्त प्रलाप हो जाता है। 'घ्नन्ति वा एतत् पशुम् यदेनं हिंसन्ति' यह वाक्य तो निरर्थक है। हां हमारे अर्थ में यह वाक्य सार्थक हो जाता है। हम इस वाक्य का अर्थ इस प्रकार करते हैं कि पशु अर्थात् बालक को जो 'सञ्ज्ञपयन्ति' सुशिक्षा देते हैं, जो 'विशासति' अनेक प्रकार के कठोर शासनों में रखते हैं यह भी उसको एक प्रकार मारना है। क्योंकि विद्याप्राप्ति में विद्यार्थी की अनेकविध ताड़ना होती है। सो इस अर्थ में वाक्य सङ्गत हो जाता है। इस प्रकार हमने विशस्ता के अर्थ में प्रमाण दे दिया अब आगे चलते हैं।

अब यह प्रविविक्त को सत्सङ्ग में लेने वाले को सम्बोधन करके अध्वर्य्यु कहता है कि इस खिलौने को पकाने की 'कुम्भीम्' कुम्भी को में ऋचाओं द्वारा 'अग्नौ' आग पर चढ़ाता हूं।

हे (विशस्ता) गुरो इस पर (उदकम्) पानी (आसिञ्च) छिड़का (अधिश्रयामि) मट्टी के खिलौने पर पकाने से पहिले पानी का हाथ फेर कर सुडौल बनाया जाता है। इसी लिये यहाँ 'आसिञ्च' शब्द है (एनम्) इसको (अवधेहि) उस अग्नि में स्थापित कर (शमितारः) हे इसे शान्ति देने वाले सत्सङ्गियो! इसको (अग्निना) अग्नि से 'पर्य्याधत्त' अच्छी प्रकार ढक दो इससे स्पष्ट है कि यहाँ कुम्भी का अर्थ वह सांचा है जिसमें (Clay model) पकाया जाता है नकि घड़ा। क्योंकि घड़े के नीचे आग जलाई जाती है न कि चारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर (शृतः) परिपक्व हुआ हुआ यह वानप्रस्थी (यत्त) जहां (सुकृतान्) पुण्यात्माओं का (लोकः) धाम संन्यास तथा मोक्षादि है वहां (गच्छतु) जाये । ५ ।

उत्क्रामातः परि चेदतप्तस्तप्ताच्चरोरधिनाकं तृतीयम् । अग्नेरग्निरधिसंबभूविथ ज्योतिष्मन्तमभिलोकं जयैतम् ॥ ६ ॥

हे प्रविविक्षो ! (चेत्) यदि तू (अतप्तः) कुछ तपोहीन है अर्थात् यदि गृहस्थ में तेरा पूर्वाश्रम सञ्चित तप कुछ क्षीण हो गया है तो तू (अतः) यहांसे (तप्तात्) तपोयुक्त (चरोः) दिनचर्य्या से (तृतीयम्) तीसरे (नाकम्) स्वर्ग की ओर (अध्युत्क्राम) ऊपर उठ। (अग्नेः) ज्ञानाग्नि युक्त महात्माओं के संग तथा तीव्र तपोमय तथा ज्ञानमय अग्नि से (अग्निः) तू भी अग्नि (संबभूविथ) हो गया ऐसा हम कह सकें अर्थात् तू भी अग्निरूप हो जा। और (एतम्) इस वानप्रस्थ रूप (ज्योतिष्मन्तम्) ज्योतिर्म्मय (लोकम्) आश्रम को (अभिजय) उद्योग द्वारा जीत। यही बात "तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये" में कही गई है। ६ ।

अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः । अजस्तमांस्यपहन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥ ७ ॥

हे अज ! तू अपने आप को बकरा मत जान, नाही तू अपने आप को देह समझ, यह (अजः) अजन्मा जीवात्मा तो (हि)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय से (अग्निः) नित्य अग्नि है (अजम्) जीवात्मा को (उ) तो (ज्योतिः) समझदार लोग नित्य ज्योति (आहुः) बतलाते हैं। यही नहीं विद्वान् लोग (अजम्) जीवात्मा को, अध्यात्म शरीर को (जीवता) जीवधारी मात्र द्वारा (ब्रह्मणे) परमात्मा के लिये (देयम्) अर्पण करने योग्य (आहुः) बताते हैं (अस्मिन्) इस (लोके) लोक में (श्रद्धानेन) श्रद्धायुक्त मनुष्य द्वारा यहां फिर 'तपःश्रद्धे' की पूर्व-ध्वनि है—(दत्तः) ब्रह्मार्पण किया हुआ (अज) अध्यात्म शरीर (दूरम्) दूर तक (तमांसि) अन्धकारों को (अपहन्ति) नाश करता है। ७ ;

अगले मन्त्र में पञ्चौदन शब्द है । मन्त्र की व्याख्या से पहिले इस पर विचार हो जाना चाहिये। ओदन शब्द का प्रसिद्ध अर्थ भात है । देखना चाहिये कि इसका यह अर्थ कैसे हुआ। इसलिये पहिले इसकी व्युत्पत्ति देखनी चाहिये। यह शब्द "उन्दी क्लेदने" से बना है। इसका अर्थ है गीला करने वाला। जिस समय सुपरिपक्व भात मुख में आता है तो रसना गीली हो जाती है; मुँह में पानी आ जाता है । इस लिये उसे ओदन कहते हैं। इसलिये इसका वास्तविक अर्थ हुआ भोग अथवा सुख साधन, जो हमें आनन्द रस-प्लुत करदे। इसीलिये परमौदन वह परमात्मा है जिसे कहा है 'रसो वै सः' । अब पञ्चौदन में समास क्या है ? यह भी देखना चाहिये। थोड़ी देर के लिये ओदन का अर्थ भात मान लीजिये। अब यदि तो जातिवाची एक वचन मानें तब तो पञ्च यह विशेषण सङ्गत नहीं होता, और यदि ओदन बहुवच-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नान्त हो तो पञ्च क्यों ? इससे स्पष्ट है कि यह कर्म्मधारय नहीं। द्वन्द्व भी नहीं हो सकता क्योंकि द्वन्द्व समकक्षों का होता है, न कि एक संख्यावाची का और एक द्रव्य पद का । अव्ययीभाव में पञ्चौदनम् रूप होना चाहिये । इसलिये अव्ययीभाव अथवा समाहार द्विगु भी नहीं हो सकता क्योंकि वहां भी वही बात है। अब दो ही शेष रह जाते हैं। एक षष्ठी तत्पुरुष, दूसरा बहुव्रीहि। अर्थात् पांचों का ओदन अथवा पांच हैं ओदन जिसके। हमें इन में से बहुव्रीहि ही युक्ततर प्रतीत होता है । क्योंकि पांच इन्द्रिय जीवात्मा के ओदन अर्थात् भोग साधन हैं । इस प्रकार पञ्चौदन का अर्थ निर्णय करके मन्त्र का अर्थ करते हैं।

पञ्चौदनः पञ्चधा विक्रमतामाक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि। ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥ ८ ॥

(त्रीणि) तीन (ज्योतींषि) ज्योतिर्म्मय अवस्थाओं को (आक्रंस्यमाणः) अधिकार गत किया चाहता हुआ (पञ्चौदनः) यह पांच ओदन अर्थात् रस छेदन इन्द्रियों वाला जीवात्मा (पंचधा) पांच प्रकार से (विक्रमताम्) अपना पराक्रम दिखाए अर्थात् इन पांचों पर ऐसा आधिपत्य प्राप्त करे जिस से यह भृत्य इन्द्रियें अपना पराक्रम न दिखा कर स्वामी का पराक्रम दिखाएं। हे जीव! इस प्रकार पांच ओदनों का स्वामी होकर तू (ईजानानाम्) जो गृहस्थाश्रम में अनेक विध यज्ञ कर चुके हैं और अब तृप्त हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन (सुकृताम्) पुण्यात्माओं के (मध्यम्) बीच (प्रेहि) पहुँच और अब से (तृतीये) तीसरे (नाके) स्वर्ग में (विश्रयस्व) बसेरा कर । ८ ।

अजारोह सुकृतां लोकः शरभो न चत्तोति दुर्गाण्येषः पञ्चौदनः ब्रह्मणे दीयमानः सं दातारं तृप्त्या तर्पयाति ॥ ९ ॥

हे (अज) जीवात्मन् ! (यत्र) जहां (सुकृताम्) पुण्यात्माओं का (लोकः) पदवी है वहां (शरभः) शरभ (न) की तरह (आरोह) चढ़ जा यद्यपि वह लोक (दुर्गाणि) परम दुर्गम घाटियों को (अतिचन्तः) लांघ कर स्थित है । तू भी तो शरभ है बकरा तो नहीं, छलांग मार । (सः) वही वह (पंचौदनः) पांच भोग साधनों वाला (अजः) जीव (ब्रह्मणे) पर ब्रह्म के लिये (दीयमानः) दान दिया जाय तो (दातारं) दाता को (तृप्त्या) परम तृप्ति से (तर्पयाति) तृप्त करता है । ९ ।

अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे नाकस्य पृष्ठे ददिवांसं दधाति । पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका ॥ १० ॥

यह (पञ्चौदनः) पांच इन्द्रिय रूप भोग साधनों वाला (अजः) अज (ब्रह्मणे) पर ब्रह्म के लिये (दीयमानः) अर्पण किया जाता हुआ (अजः) अज (ददिवांसं) दान देने वाले को (त्रिनाके) नाकत्रयी में से (त्रिदिवे) मन, वचन, कर्म तीनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्य स्थानों में (त्रिपृष्ठे) तीनों लोकों में (नाकस्य) उत्तम सुख के (पृष्ठे) आसन पर (दधाति) स्थित करता है। हे अज ! तू तो (एका) एक (विश्वरूपा) पूर्ण रूप (काम दुघा) सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करने वाली (धेनुः) गौ है। १०।

एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति। अजस्तमांस्यपहन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद्धानेन दत्तः ॥ ११ ॥

हे (पितरः) वृद्धावस्था को प्राप्त ज्ञानी लोगो ! यह वान-प्रस्थाश्रम में प्रवेशार्थी जो अज (पञ्चौदनम्) पांच इन्द्रिय ओदन वाले (अजम्) अपने आत्मा को (ब्रह्मणे) ब्रह्म के लिये (ददाति) अर्पण करने लगा है (एतद्) यह (वः) आपका (तृतीयं) तीसरी (ज्योतिः) ज्योति है अर्थात् यह आप के तृतीयाश्रम में प्रवेश का फल है क्योंकि आप का अनुकरण करके ही यह भी इस तृतीय नाक में आ रहा है। इसने भी आप के सत्संग से जान लिया है (श्रद्धानेन) श्रद्धायुक्त मनुष्य द्वारा (दत्तः) दान किया हुआ (अजः) जीवात्मा (तमांसि) अन्धकारों को (दूरम्) दूर (अपहन्ति) मार भगाता है। ११।

ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन् पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति। स व्याप्तिमभि लोकं जयैतं शिवोऽस्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु ॥ १२ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब अध्वर्य्यु वानप्रस्थाश्रम में पहुंचे हुए लोगों को सम्बोधन करके कहता है कि हे पितर जनो ! यह प्रवेशार्थी जो आज से (पंचौदनम्) पंचभोग साधन समेत (अजम्) अपने जीवात्मा को (ब्रह्मणे) पर ब्रह्म के लिये (ददाति) अर्पण करता है। सो (ईजानानाम्) यज्ञ द्वारा कृत-कृत्य हुए (सुकृताम्) पुण्यात्माओं की (लोकम्) पदवी को (ईप्सन्) पाने की अभिलाषा करता हुआ ऐसा कहता है।

अब प्रवेशार्थी से कहता है (सः) वह तू (प्रतिगृहीतः) हम गृहस्थियों द्वारा वानप्रस्थियों के लिये अथवा अपने आप द्वारा परब्रह्म के लिये अर्थित हो कर स्वीकार किया हुआ (एतम्) इस (व्याप्तिम्) विविध सुख प्रापक (लोकम्) पद को (जय) अपने गुणों द्वारा जीत और (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (शिवः) कल्याण कारी हो। १२।

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकाद् विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित् । इष्टा पूर्तमभिपूर्तं वषट्कृतं तद्देवा ऋतुशः कल्पयन्तु ॥ १३ ॥

यह (विपश्चित्) विद्वान् (विप्रः) मेधावी (अजः) जीव (विप्रस्य) मेधावी (अग्नेः) मार्ग दर्शक ब्राह्मण के (सहसः) सहस्वी (शोकात्) तेज से (अजनिष्ट) उत्पन्न हुआ है। इसने (इष्टं) यज्ञयागादि (पूर्तम्) बापी कूप तड़ागादि परोपकार कर्म गृहस्थाश्रम में (अभिपूर्तम्) पूर्ण कर लिये हैं और (वषट् कृतम्) भली प्रकार कर लिए हैं (तद्) इस लिए (देवाः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् लोग इसको (ऋतुशः) निदाघ संयत् आदि वक्ष्यमाण सम्पूर्ण साधनों के द्वारा (कल्पयन्तु) सामर्थ्य युक्त बनावें। १३।

इष्टापूर्त्त का गृहस्थ से सम्बन्ध प्रश्नोपनिषद् प्रथम प्रश्न में स्पष्ट है।

अमोतं वासो दद्याद्धिरण्यमपि दक्षिणाम्। तथा लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ॥ १४ ॥

वानप्रस्थ में प्रवेशार्थी को संस्कार के समय उचित है कि वह (अमोतम्) स्वयं वा समीपवर्ती पुत्र स्नुषादि द्वारा बुना हुआ यद्वा कालकृत सामीप्य से ताज़ा बुना हुआ (वासः) वस्त्र और यथाशक्ति (हिरण्यम्) स्वर्ण (अपि) भी (दक्षिणाम्) दक्षिणा दे इससे वह (ये) जो (पार्थिवाः) ब्रह्मचर्य्याश्रम के (च) और (ये) जो (दिव्याः) वानप्रस्थाश्रम के लोक हों उन (लोकान्) लोगों अथवा पदों को (समाप्नोति) प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

एतास्त्वाजोप यन्तु धाराः सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुश्चुतः। स्तभान पृथिवीमुत द्यां नाकस्य पृष्ठेऽधि सप्तरश्मौ ॥ १५ ॥

हे (अज) जीव (त्वा) तुझको (एताः) यह (सोम्याः) सोम्य शील (धाराः) धारण शील अथवा जल धारा के समान शीतल (घृतपृष्ठाः) तपोबल युक्त देदीप्यमान (मधुश्चुतः) मधुरता बरसाने वाली (देवीः) दिव्य स्वभाव युक्त वानप्रस्थाश्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रविष्ट स्त्रियें (उपयन्तु) स्वागतार्थ प्राप्त हों। तू (सप्तरश्मौ) सप्त प्राण विद्या युक्त (नाकस्य) उत्तम सुख युक्त इस वानप्रस्थाश्रम के (पृष्ठे) धाम में (पृथिवीम्) ब्रह्मचर्य्याश्रम को (उत) और (द्याम्) वानप्रस्थाश्रम को (अधिस्तभान) सम्भाल कर रख। यहां द्यौः और पृथिवी का वर्णन होना और अन्तरिक्ष का वर्णन न होना इसे और अधिक स्पष्ट करता है कि वह गृहस्थाश्रम को छोड़ रहा है। ब्रह्मचारियों का वानप्रस्थ लोगों के पास विद्याध्ययन करना ब्रह्मचर्य्याश्रम के सामान को स्पष्ट करता है। १५।

प्रविविक्षु अपने आपका सम्बोधन करके आत्म प्रोत्साहन करता है।

अजोऽस्यज स्वर्गोऽसि त्वया लोकमङ्गिरसः प्राजानन्। तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषम्॥ १६॥

हे (अज) जीव ! तू (अजः) सदा गति शील है (अज गति कम्पनयोः) (असि) है (स्वर्गः) 'स्वः' की ओर जाने वाला है तेरे द्वारा (अङ्गिरसः) अंगों को रसाप्लुत रखने वाले भक्त लोग (लोकम्) उत्तम ज्ञान युक्त पद को (प्राजानन्) जानते रहे हैं अर्थात् जाना करते हैं मैं भी (तम्) उस (पुण्यम्) पुण्यमय (लोकम्) पद को (प्रज्ञेषम्) जान जाऊँ। १६।

यहां 'स्वर्ग' शब्द अज का विशेषण होकर आया है जो ध्यान देने योग्य है, इससे पता लगता है कि यह इस शब्द का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ वेद में जीवित है । इससे इस शब्द का यौगिक होना स्पष्ट सिद्ध है । चारों वेदों में स्वर्ग शब्द ५० स्थलों पर आया है जिनमें से २८ स्थलों पर विशेषण रूप से आया है। जहां विशेष्य रूप से भी आया है वहां लोक का अध्याहार है। परन्तु इनमें सब से अधिक प्रकाश डालने वाला विशेष्य 'पन्थाः' है—

अथर्ववेद ११ काण्ड	सूक्त १	मन्त्र २८
११ ,,	,,	,, ३०
१८ ,,	सूत्र ४	,, १४

इन तीन स्थलों पर स्पष्ट 'स्वः' की ओर जानेवाले मार्ग का वर्णन है। यह शब्द आश्रम शब्द की वड़ी सुन्दर व्याख्या करता है। 'स्वः' में पहुँचना है। वहां देव मंडली रहती है। वह अन्तिम विश्राम स्थली है। रास्ते में तीन आश्रम और हैं । इन्हें ही तीन लोक कह सकते हैं। यह पंखों वाला अज 'स्वः' की ओर उड़ा जा रहा है, किन्तु मार्ग में तीन स्थानों पर रुकता है । वह तीन आश्रम हैं। इन्हें ही यजु (१३०।३१) तथा अथर्व (१२. ३. ४२) में तीन स्वर्ग तथा अलङ्कारान्तर से तीन काण्ड कहा है। अब प्रश्न है कि यह अज 'स्वः' की ओर इस स्वर्ग 'पन्थाः' पर क्या लिये जा रहा है। उसका वर्णन भी सुन लीजिये—

अष्ट चक्रा नवद्वारा देवानाम्पूरयोध्या ।

तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥

अ० १०. २. ३१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् इस नवद्वारमयी पुरी अर्थात् देह में 'स्वः' की ओर जाने वाला एक ज्योतिरावृत हिरण्यमय कोश है । अब आप देखते हैं कि यह स्वः की ओर जानेवाला देह में ही व्यवस्थित है। हे अज ! तू भी पंख लगाकर इस ख़ज़ाने को लेकर उड़ । तू तो स्वर्ग 'स्वः' की ओर जाने वाला है दुःखग नहीं ।

येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ १७ ॥

अब सभा मण्डप में उपस्थित लोग उस वानप्रस्थ में प्रविविक्त के लिये प्रार्थना करते हैं।

हे अग्रणियों के अग्रणी परमाग्ने प्रभो ! अपनी जिस कृपा से आप हमें (सहस्रम्) सहस्र दक्षिणा अथवा (सर्व वेदसम्) सर्वस्व दक्षिणायुक्त संन्यासाश्रम प्रवेश के समय के यज्ञ तक (वहसि) पहुँचाते हो आज भी अपनी उस कृपा से (नः) हमारे (इमम्) इस प्रवेशार्थी को वानप्रस्थ में कराने रूप (यज्ञम्) यज्ञ को (स्वः) स्वः तक (देवेषु) देव मण्डली में (गन्तवे) जाने के लिये (वह) खेंच ले जा । १७ ।

यहां 'सर्व वेदसम्' शब्द अत्यन्त ध्यान देने योग्य है । मनु ने जहां संन्यास का वर्णन किया है वहां यही शब्द प्रयुक्त हुआ है । श्लोक इस प्रकार है—

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदाक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥

मनु० ६ । ३८ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तृतीय नाक के बाद 'येन सर्ववेदसम् वहसि तेन वह' यह चतुर्थाश्रम का कितना स्पष्ट वर्णन है। साथ ही उसका नाम 'स्वः' भी कितना स्पष्ट है । इसके साथ चतुर्थ काण्ड के १४ सूक्त में आए हुए अज वर्णन को मिलाइये । वहां भी स्पष्ट यही कहा है दिवस्पृष्टं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्यम्—द्यौः की भी छत स्वरूप जो स्वः लोक है वहाँ पहुँच कर देवों में मिश्रित होकर रहो।

अब अगले मन्त्र में पञ्चौदन परिपाक की महिमा कही गई है। इसलिये थोड़ा सा उस पर विचार करलें। पहिले परिपाक शब्द को लीजिये।

परिपाक का अर्थ प्रायः गलाना अथवा नरम करना समझा जाता है। किन्तु यदि आप गम्भीर दृष्टि से देखेंगे तो ऐसा न पायेंगे। आप कहते हैं कि यह पत्थर की कटोरी बड़ी पक्की है अथवा यह घड़ा बड़ा पक्का है । उस समय आपका क्या तात्पर्य होता है। क्या आप यह कह रहे होते हैं कि यह बड़े नरम अथवा गले हुए हैं ? कदापि नहीं। और चलिये आप कहते हैं कि यह सूत बड़ा पक्का है । वहां भी यही अर्थ होता है कि बड़ा मज़बूत है। अब मनुष्यों में आइये । आप कहते हैं कि यह बड़ा पक्का है। किसी के क़ाबू नहीं आता इन सभी वाक्यों में पक्के का अर्थ कठोर, मज़बूत अथवा चतुर है । दूसरी ओर अंगूर बेचने वाला कहता है बाबू जी ! फल बिलकुल पक्के हैं मुंह में रखते ही बताशे की तरह घुल जायेंगे। दाल पक गई देख लो गली पड़ी है। चावल बिलकुल पक गये देखो कैसे नरम हैं, इनकी कनी बिलकुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर गई। यहां पकने का अर्थ ठीक उलटा है। यह क्या गोरखधंधा है ? क्या इन दोनों परस्पर विरोधी अर्थों को बांधने वाली शृङ्खला कोई नहीं ? क्या यह बिलकुल वाग्योग (मुहावरे) का विलास है ? कदापि नहीं। परिपाक का अर्थ न कठोर होता है न गलना ? परिपाक का अर्थ है आत्मानुरूप कार्य्य-क्षमता की परिपूर्णता। घड़ा अथवा कटोरी की कार्य्य क्षमता इसी में है कि वह न टूटे, इसलिये यहां परिपाक का अर्थ कठोरता है। मनुष्य की कार्य क्षमता इसी में है कि वह धोखा न खाये इसलिये उसका अर्थ है पूर्ण चतुरता। भोजन की कार्य्य क्षमता इसी में है कि वह सुख से खाया जाय और पेट में भी आमाशय को कष्ट न दे इसलिये भोजन के पदार्थों में गलना परिपाक है। भोजन पक्का वह है जो सुख से चबाया जाय। दांत पक्के वह हैं जो लोहा भी तोड़ दें। यह है परिपाक का अर्थ। अब ज़रा अज तथा इन्द्रियों का परस्पर सम्बन्ध देखिये। अज भोक्ता होना चाहिये और इन्द्रिय भोज्य। परन्तु संसार में प्रायः है उलटा। है यह अवस्था कि 'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।'

क्या अन्धेर है! ओदन खाने वाले को खा रहे हैं : इस लिये अब क्या करें ? दोनों को पकाओ। ओदन गलाओ और खाने वाले को कठोर करो। इसीलिये इस सूक्त के उपसंहार में कहा है—अजं च पचत पञ्च चौदनान्। अज को भी पक्का करो और पांच ओदनों को भी पकाओ। जिससे यह गलें और अज इन्हें खाए। इसलिये ओदन गलाए जा रहे हैं और उसका सर्वांग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भरण किया जा रहा है। बस ऐसी अवस्था ले जाओ कि यह अज पांचों ओदनों को खाए। ओदन अज को न खाए। यह षष्ठी तत्पुरुष का पांचों का ओदन न हो, किन्तु बहुब्रीहि द्वारा पांचों हैं ओदन जिसके वह बन जाय। यह है पञ्चौदन परिपाक का अर्थ। अब मन्त्र का अर्थ सुनिये—

अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः। तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम ॥ १८ ॥

(पक्वः) कठोर हुआ हुआ (अजः) अध्यात्म शरीर और (पञ्चौदन) गला हुआ पांचों इन्द्रियों वाला भात (निर्ऋतिम्) सज्जन मनुष्यों की श्रेणी में से बाहर निकाल देने वाले पाप रूप शत्रु को (बाधमानः) दूर करता हुआ (स्वर्गे) संन्यास अथवा मोक्ष की ओर जाने वाले (लोके) आश्रम में (दधाति) स्थापना करता है।

हम सब (तेन) इस प्रकार कठोर हुए हुए पांच ओदनों को खाने वाले अध्यात्म शरीर से (सूर्य्यवतः) ज्ञानमय अथवा वीर्य्ययुक्त (लोकान्) पदों को (जयेम) जीतें ॥ १८ ॥

यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु या विप्रुष ओदनाना-मजस्य। सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान्नः संगमने पथीनाम् ॥ १९ ॥

हे (अग्ने) अग्रणियों के अग्रणी प्रभो! (पथीनाम्) स्वः की ओर चलने वाले पथिकों के (सङ्गमने) इकट्ठा होने के स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस (सुकृतस्य) पुण्य के (लोके) धाम वानप्रस्थाश्रम में (नः) हमारे (तत्) उस सब अवस्था को (जानीतात्) आप भली प्रकार जानें और हमें भी उसका ज्ञान प्राप्त करावें ।

मैं (यम्) जिस ज्ञान रूप ओदन को (ब्राह्मणे) ब्राह्मण वर्ग की रक्षा में (निदधे) अर्पण करता हूँ (च) और (यम्) जिस अन्नादि रूप ओदन को (विक्षु) प्रजावर्गमात्र में (निदधे) रखता हूँ और (अजस्य) जीवात्मा के योग्य (ओदनानाम्) पांच इन्द्रिय रूप भातों के (या) जो (विप्रुषः) कण इधर उधर बिखरे पड़े हैं ॥ १९ ॥

इस प्रकार प्रविविक्षु के लिये (आशीः) प्रार्थना का उपदेश करके भगवान् उस क्षुद्र अज को महाज का अर्थात् सृष्टि रूप अज का उपदेश करते हैं—

हे अज ! यह तेरे सामने एक अपरिमित महाज है । तुझे अपने अन्दर इसका ही स्वरूप धारण करना है ।

अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमभवद्द्यौः पृष्ठम् । अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी ॥ २० ॥

देख (अग्रे) आरम्भ में (वा) भी तो (इदम्) इस आकाश में (अजः) एक विशाल अज (व्यक्रमत) अपना पराक्रम दिखाता रहा है (तस्य) उसका (उरः) छाती (इयम्) यह पृथिवी (अभवत्) बनी (द्यौः) जहां तारे आदि चमकते हैं वह देदीप्यमान लोक (पृष्ठम्) पीठ बना (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मध्यम्) मध्य भाग बना (समुद्रौ) समुद्र (कुक्षी) कोखें बनीं । २० ।

सत्यं चर्तं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः । एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥ २१ ॥

(सत्यं) सत्य (च) और (ऋतम्) ऋत (च) भी (चक्षुषी) आंखें बनी (विश्वं) सम्पूर्ण (सत्यम्) संसार की सत्य विद्या तथा उनमें (श्रद्धा) श्रद्धा (प्राणः) प्राण बना (विराट्) विशेषेण राजमान मानव सृष्टि (शिरः) सिर बना । (एष) यह (वा) निश्चय से (अपरिमितः) अपरिमित (यज्ञः) यज्ञ है (यत्) यह जो ब्रह्माण्ड में (पञ्चौदनः) पञ्च महाभूत रूप ओदनों को खाकर जीने वाला महान् (अजः) अज है । २१ ।

अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमवरुन्धे । योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २२ ॥

(यः) जो (दक्षिणा ज्योतिषम्) वानप्रस्थ प्रवेश के समय अनेकविध दान से ज्योतिर्म्मय अर्थात् सुभूषित (पञ्चौदनम्) पञ्चेन्द्रिय युक्त (अजम्) अपने आत्मा को (ददाति) लोकोपकारार्थ तपोधन लोगों के सत्संग में अर्पण करता है वह (अपरिमितम्) अपरिमित (एव) ही (यज्ञम्) यज्ञ को (आप्नोति) प्राप्त होता है (अपरिमितम्) अपरिमित (लोकम्) लोक को (अवरुन्धे) अपने उपकारों से वशीभूत कर लेता है । २२ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वानप्रस्थ में तप करना है किन्तु तप का अर्थ आत्म पीड़न नहीं। वह तो "मूढग्राहेणात्मन उत्पीडया क्रियते" है। योग-दर्शन में 'तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।' २ पा० सू० १।

इस सूत्र के भाष्य में व्यास मुनि लिखते हैं।

'तत् (तपः) चित्तप्रसादमबाधमानमनेन (योगिना) आसेव्यम्।'

अर्थात् योगी को तप इतना करना चाहिये कि जिससे उसके चित्त-प्रसाद में बाधा न हो। इसी प्रकार गीता में कहा है—

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपोजनाः।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः॥
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्॥

गीता० १७। ५। ६

अब परम कवि का आदेश भी सुनिये। मनुष्य का धर्म्म है कि वह—

नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्ज्ञो निर्धयेत्। सर्वमेनं समादायेदमिदं प्रवेशयेत्॥ २३॥

(न) न (अस्य) इस अज की (अस्थीनि) हड्डियां (भिन्द्यात्) तोड़े (न) नहीं (अस्य) इसकी (मज्ज्ञः) मज्जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (निर्धर्येत्) बाहर झाड़े (सर्वम्) सारे के सारे (एनम्) इस अज को (समादाय) लेकर (इदम्) इसके इस उभय विध देह को (इदम्) इस महान् अपरिमित अज में (प्रवेशयेत्) अन्तर्गत करदे । अर्थात् जिस प्रकार उसके सत्य ऋत आदि अङ्ग हैं अपने भी बना ले । तात्पर्य्य यह कि तप करे किन्तु ऐसा बेढङ्गा न करे कि हड्डी पसली टूट जावे और मींग झड़ने लगे ॥२३॥

इस प्रकार महान् अज का अनुकरण करने का फल यह होता है कि वह परमात्मा—

इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं संगमयति । इषं मह ऊर्जमस्मै दुहे योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २४ ॥

(तेन) उस पूर्व वर्णित महान् अज से (एनम्) इस छोटे अज को (सङ्गमयति) सङ्गत कर देता है जो संसार में (दक्षिणा-ज्योतिषम्) दक्षिणालंकृति (पञ्चौदनम्) पञ्चौदन युक्त (अजम्) अज को (ददाति) लोकोपकारार्थ दान करता है (अस्मै) उस के लिये यह पञ्चौदन यज्ञ (इषम्) अन्न को (ऊर्जम्) अन्न के रस अर्थात् बल को (दुहे) दुहता है अर्थात् देता है ।२४।

पञ्च रुक्माः नवानि वस्त्रा पञ्चास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति । योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २५ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पञ्च) पांच (रुक्माः) संसार को रोचमान बनाने वाले रूपादि विषय (पञ्च) पांच (नवानि) नए (वस्त्र) अन्नमयादि कोश जो इस आश्रम में काया-कल्प द्वारा नए किए जाते हैं (पञ्च) पांच (धेनवः) ज्ञान तथा आनन्द रूप दूध देने वाली इन्द्रिय रूप गौ (अस्मै) इस वानप्रस्थाश्रम के साधक के लिये (कामदुघाः) दुःख देने वाली होने के स्थान पर सब कामनाएं पूर्ण करने वाली हो जाती हैं। (यः) जो०— । २५ ।

पञ्च रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्म वासांसि तन्वे भवन्ति। स्वर्गं लोकमश्नुते योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २६ ॥

(पञ्च) पांच (रुक्माः) रोचक विषय जो संसार के वन्धन का कारण होते हैं (अस्मै) इस जितेन्द्रिय पञ्चौदन यज्ञ करने वाले के लिये (तन्वे) इस के शरीर के लिये (वर्म) कवच (वासांसि) दोषाच्छादक श्रीवर्धक वस्त्र बन जाते हैं। (स्वर्गं) स्वः की ओर जाने वाले सुखमय (लोकम्) वानप्रस्थाश्रम को वह (अश्नुते) पूर्णतया आस्वादन करता है। (यः) जो०— । २६ ।

या पूर्वं पतिं वित्त्वाऽथान्यं विन्दते परम्। पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः ॥ २७ ॥

यदि कोई स्त्री पहिले एक पति को प्राप्त होकर दूसरा पति विवाहादि द्वारा पाती है तो उनमें प्रायः लड़ाई झगड़ा और पुन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वियोग का भय रहता है किन्तु (या) जो स्त्री (पूर्वम्) पहिले (पतिम्) पति को (वित्त्वा) पाकर (अथ) दूसरी बार (अन्यम्) दूसरे (पतिम) पति को (विन्दते) प्राप्त होती है।

(च) परन्तु यदि (तौ) वह दोनों दम्पति (पञ्चौदनम्) पञ्चौदन युक्त (अजम्) अपने जीव को (ददातः) लोकोपकारार्थ दान करते हैं तो वे (न) नहीं (वियोषतः) वियुक्त होते।

तात्पर्य यह कि यदि कोई स्त्री-पुरुष कभी दूसरी बार विवाह करने की भूल कर भी बैठें तो फिर उन्हें पूर्ण जितेन्द्रिय होकर रहने का यत्न करना चाहिए तभी वे परस्पर झगड़ते नहीं और वानप्रस्थ में प्रवेश करने में भी समर्थ होते हैं। अन्यथा पुनर्विवाह करने वालों को वृद्धावस्था में भी सन्तान होने से वानप्रस्थ प्रवेश असम्भव हो जाता है जिस से वह लोकोपकार के आनन्द से भी वञ्चित होते हैं और ऋषि-ऋण से मुक्त न हो सकने के कारण प्रायश्चित्ती भी होते हैं। इस लिये उनको गृहस्थ से ही पञ्चौदन परिपाक की तय्यारी करनी चाहिए इसी में उनका कल्याण है। यहां यद्यपि उपदेश दोनों को दिया गया है तथापि क्योंकि अधिक भावुक होने के कारण स्त्री को पूर्व पति की याद अधिक आती है अतः उसी का मुख्यरूपेण उल्लेख किया गया है। २७।

दूसरा विवाह करने वाले पति को स्त्री की दृष्टि में पूर्व पति का स्थान प्राप्त करना कठिन है परन्तु यदि यथा कथञ्चित् यह बात सम्भव है तो वह एक ही उपाय से। वह उपाय क्या है सो बताते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः। योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २८ ॥

(परः) दूसरा पति (पुनर्भुवा) दूसरी बार पत्नी बनने वाली स्त्री के साथ (समान लोकः) पूर्व पति के समान पदवी वाला (भवति) हो जाता है। (यः) जो०—।२८।

इस प्रकार पंचौदन पाक की महिमा जानता हुआ मनुष्य वानप्रस्थ में प्रवेश के समय गृहस्थ के त्याग को रोता हुआ न जावे, किन्तु वानप्रस्थ में प्रवेश का आनन्द मनाता हुआ जावे। जिस प्रकार उसने गृहस्थ में प्रवेश के समय आनन्द मनाया था, अनेक विध दान किया था उसी प्रकार इस समय दान देकर आनन्द मनाता हुआ जावे इसलिये कहते हैं कि—

अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम्। वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् ॥२९॥

यहां से जो सच्चे वीर होते हैं। (ते) वे (अनुपूर्ववत्सां) जिसके पीछे पहली ब्यांत का बछड़ा हो ऐसी (धेनुम्) गौ को (अनड्वाहम्) बैल को (उपबर्हणम्) पूरा शयन का सामान (वासः) वस्त्र और (हिरण्यम्) स्वर्ण (दत्त्वा) दान करके तब (उत्तमाम्) इस उत्तम (दिवम्) देव अर्थात् विद्वानों के धाम वानप्रस्थ में (यन्ति) प्रवेश करते हैं। २९।

इसी लिये वानप्रस्थ के प्रवेशार्थी की मनोदशा क्या होनी चाहिये वह आगे है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् । जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुपह्वये ॥३०॥ (१३)

वह कहता है इतने दिनों गृहस्थ के भोग युक्त जीवन में प्रयत्न करने पर भी मेरा आत्मा विषय रूप घोड़ों से दब गया है, ओदनों का ओदन हो गया है, भोक्तव्यों का भोजन होगया है, इसलिये सब से पहिले तो मैं आज उस "आत्मदा" की सङ्गति में जाता हुआ (आत्मानम्) अपने आपको फिर (पितरम्) अपने पिता को और यदि जीवित हो तो (पितामहम्) पितामह को (पौत्रम्) सद्योजात पोते को, इसी से मनु ने 'अपत्यस्यैव चापत्यम्' लिखा है (जायाम्) पत्नी को (जनित्रीम्) जननी को, किम्बहुना (ये) जो (प्रियाः) प्रिय हैं (तान्) उनको (उपहूये) सप्रेम अपने समीप बुलाता हूँ । ३० ।

मनुष्य वह है जो शरीर की सब ऋतुओं को पहिचानता है । शरीर में बाल्यावस्था शरद् की भांति है । वनस्पति शास्त्र के जानने वाले कहते हैं कि वृक्षों में कलिका शरद् ऋतु में विश्राम करके वसन्त ऋतुमें शाखा बनती है । (महेशचरणसिंह कृत वनस्पति शास्त्र पृ० ४१) साथ ही वह कहते हैं कि वृक्ष की कलिका में "पत्ती और फूल बनने की सामग्री उपस्थित" रहती है जो "आवश्यकतानुसार ताप पाते ही" विकसित हो जाती है । बाल्यावस्था शरद् के समान निष्कलङ्क है । किन्तु थोड़ा ताप बढ़ते ही यौवन की वसन्त आती है । यह दो ऋतु लोग प्रायः जानते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषकर वसन्त का यौवन से सादृश्य तो इतना स्पष्ट है कि उसे पुराणकारों ने काम का सखा कहा है। परन्तु लोगों की दौड़ प्रायः यहीं समाप्त होजाती है। परन्तु शास्त्रों के देखने से दो और ऋतुओं का भी पता लगता है। यदि आप ऋतु शब्द का यौगिक अर्थ देखें तो इसका अर्थ (Course) है, क्योंकि यह शब्द 'ऋ गतौ' धातु से बना है। दो ऋतु (Course) प्रायः सब जीवन यात्रा के यात्रियों को पता है। परन्तु अब वेद कहता है जानकार तो वह है "या वै नैदाघं नामर्त्तुम् वेद" । चरक मुनि ने ऋतुओं को आदान और विसर्ग दो भागों में बांटा है। मनुष्य के जीवन में बाल्यकाल शरद् ऋतु के समान है जिसके अन्त में वह ज्ञान तथा शक्ति से इस प्रकार सम्पन्न होता है जैसे शरद् के अन्त में शस्यसम्पन्ना परिपक्वकलम-पिङ्गला धरिणी। फिर यौवन विसर्ग काल है जिसमें लता विटप सब के सब पुष्प पल्लवों का प्रकाश करते हैं। परन्तु शास्त्रों में कहीं देख लीजिये वानप्रस्थ के द्वार पर लिखा है" "तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये।" इसलिये तपः प्रधान होने के कारण यह फिर ग्रीष्म आगया। यह आदान काल आगया। उसके पश्चात् ज्ञान-मेघ बनकर मनुष्य बरसता है। वह वर्षा ऋतु है। इसीलिये यहां भी वानप्रस्थाश्रम के आरम्भ में कहते हैं:—

यो वै नैदाघं नामर्तुं वेद। एष वै नैदाघो नामर्तुर्य-दजः पञ्चौदनः। निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियँ दहति भवत्यात्मना। योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति॥३१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो इस जीवन की ग्रीष्म ऋतु इस वानप्रस्थाश्रम के तत्त्व को जानता है वह तत्त्वज्ञ है। अब प्रभु इस ऋतु का तत्त्व खोलते हैं (यत्) यह जो (पञ्चौदनः) पञ्चौदनयुक्त (अजः) वानप्रस्थ प्रविष्ट जीव है वह (वै) निश्चय से (नैदाघः) तपः प्रधान, ताप द्वारा मलों को दग्ध करने वाला, ओदनों को गलाने वाला, जीव को परिपाक द्वारा कठोर करने वाला, उसके पांच रुक्मों की कान्ति को चमकाने वाला, उसके कर्म्म को उज्ज्वल करने वाला— "निदहतीति निदाघः, अग्निः तस्मादुत्पन्नः" इस प्रकार का ग्रीष्म ऋतु मनुष्य के जीवन में आया है। यह पञ्चौदन परिपाकी अपनी (आत्मना) आत्मिक शक्ति से (अप्रियस्य) अप्रिय (भ्रातृव्यस्य) शत्रुभूत (अस्य) इस आध्यात्मिक अरिषड्-वर्ग की (श्रिय) लक्ष्मी को (निर्दहायेव) फूंक ही डालता है। (यः) जो ॥ ३१ ॥

यो वै कुर्वन्तं नामर्तुं वेद । कुर्वतींकुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमादत्ते । एष वै कुर्वन्तन्नामर्तुर्यदजः ० । ० । ० ॥ ३२ ॥

(यः) जो (वै) निश्चय से (कुर्व्वन्तं) कर्म्ममय (नाम) नाम वाले इस जीवन के ग्रीष्म ऋतु को (वेद) जानता है (कुर्व्वतीं कुर्व्वतीम्) चेष्टा करती करती (भ्रातृव्यस्य) षड्रिपुवर्ग की (श्रियम्) श्री को आधार को, (आदत्ते) नीचे से खेंच लेता है अर्थात् षड्रिपुओं की ऐसी दुर्गति होती है जैसे कोई कुरसी पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठने लगे और दूसरा चुपके से नीचे से कुरसी खेंच ले (एष) यह (वै) निश्चय से (कुर्व्वन्) क्रियाशील (नाम) नाम वाला ॥ ३२ ॥

अब इस ऋतु का तीसरा नाम बताते हैं—

यो वै संयन्तं नामर्तुं वेद। संयतींसंयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमादत्ते। एष वै संयन्नाम०।०।० ॥ ३३ ॥

(यः) जो (वै) निश्चय से (संयन्तम्) अपनी इन्द्रियों को बांधने आत्म संयम करने वाले इस संयम नाम वाले (ऋतुम्) ऋतु को (वेद) जानता है। वह (भ्रातृव्यस्य) अरिषड्वर्ग की (श्रियम्) शक्ति को (संयतीम् संयतीमेव) विषय बंन्धनों द्वारा आत्मा को बांधती बांधती को (आदत्ते) छीन लेता है (एष वै) यह ॥ ३३ ॥

यह आध्यात्मिक शरीर की क्षति पूर्ण करने वाला, उसे पांच प्रकार का भात खिला कर पुष्ट करने वाला ऋतु है यह इसका चौथा नाम बताते हैं—

यो वै पिन्वन्तं नामर्तुं वेद। पिन्वतींपिन्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमादत्ते। एष वै पिन्वन्नाम्०।०।० ॥ ३४ ॥

(यः) जो (वै) निश्चय से (पिन्वन्तं) पुष्टिकारक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नाम) नाम वाले इस (ऋतुम्) ऋतु को (वेद) जानता है वह (पिन्वतीम् पिन्वतीमेव) पुष्ट होती होती (भ्रातृव्यस्य) अरिषड्-वर्ग की (श्रियम्) वृद्धि को (आदत्ते) छीन लेता है—उन्हें विषयों को खाकर मोटा नहीं होने देता एष वै पिन्वन् ॥ ३४ ॥

वानप्रस्थी यह न समझे कि मैं कृतकृत्य हो गया । उसे अभी और ऊँचा उठना है । इसलिये पांचवां नाम बताते हैं—

यो वा उद्यन्तं नामर्तुं वेद । उद्यतीमुद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमादत्ते । एष वा उद्यन्नाम० । ० । ० ॥ ३५ ॥

(यः) जो (वै) निश्चय से (उद्यन्तम्) उदयशील (नाम) नाम वाले (ऋतुम्) ऋतु को (वेद) जानता है, वह (उद्यतीमुद्यतीमेव) उभरती उभरती (भ्रातृव्यस्य) अरिषड्वर्ग की (श्रियम्) उद्गति को (आदत्ते) दबा देता है ॥ ३५ ॥

इस प्रकार शत्रुओं पर विजय का डङ्का बजाता है । जो आत्म तापन, कर्म्म योग, आत्मसंयम, आत्म पोषण, आत्मोदय, इन पांच मार्गों से नहीं गुजरता वह इन आध्यात्मिक शत्रुओं को अभिभव करके संन्यास का अधिकारी नहीं बनता । किन्तु जो अभिभव कर देता है उसके लिये 'अभिभू' नामक ऋतु आता है। इसलिये कहते हैं कि—

यो वा अभिभुवं नामर्तुं वेद । अभिभवन्तीमाभिभवन्तीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमादत्ते । एष वा अभि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूर्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना । योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणा-ज्योतिषं ददाति ॥ ३६ ॥

(यः) जो (वै) निश्चय से (अभिभुवम्) अभिभू (नाम) नाम वाले (ऋतुम्) ऋतु को (वेद) जानता है वह (अभिभव-न्तीमभिभवन्तीमेव) अधिकार पाती पाती (भ्रातृव्यस्य) आध्यात्मिक शत्रु की (श्रियम्) लक्ष्मी को (आदत्ते) छीन लेता है । एष वा० ॥ ३६ ॥

वेद में शत्रु के लिये 'भ्रातृव्य' शब्द भी बड़ा मनोरञ्जक है । जो मनुष्य को सदा याद दिलाता है कि आज शत्रु हो गया तो क्या हुआ, है तो तेरे किसी भाई का ही पुत्र । अध्यात्म क्षेत्र में इसका अर्थ यों होगा कि हम से अभागा कौन होगा जो अपने सब से बड़े भरण करने वाले भ्राता परमेश्वर की उत्पन्न की हुई वस्तुओं को ही अपना शत्रु बना लेते हैं । जहां अपने आपको वश में किया वहीं सब पदार्थ हमारे मित्र हो जाते हैं ।

अब परिसमाप्ति में उपसंहार करते हुए प्रभु कहते हैं—

अजं च पचत पञ्च चौदनान् । सर्वा दिशः संम-नसः सध्रीचीः सान्तदेशाः प्रति गृह्णन्तु त एतम् ॥३७॥

हे मनुष्यो (अजम्) इस अपने आध्यात्मिक शरीर को (पचत) पक्का कठोर बनाओ (च) और (पञ्च) पांच इन्द्रिय रूप भोग साधनों को (च) भी (पचत) गलाओ और खाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० आचार्य प्रियव्रत वाचस्पति स्मृति संग्रह

योग्य बनाओ जिससे हे मनुष्य वर्ग आप्तकाम हुए हुए (ते) तेरे (एतम्) इस महादान को (सम्मनसः) एक मन हुई हुई (सध्रीचीः) एक दूसरे का सहयोग करती हुई (सान्तर्देशाः) विदिशा युक्त (सर्व्वाः) सारी (दिशाः) दिशाएं अर्थात् देश देशान्तरों की प्रजाएं (प्रति गृह्णन्तु) धन्यवाद पूर्वक स्वीकार करें ॥ ३७ ॥

8930

तास्ते रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं ताभ्य आज्यं हविरिदं जुहोमि ॥ ३८ ॥ (१४)

(तव) तेरे (एतम्) इस आध्यात्मिक वैभव को (ताः) वह सब प्रजाएं (तुभ्यम्) तेरे कल्याण के लिये (रक्षन्तु) रक्षा करें (इदम्) यह (आज्यम्) जो संसार में घृतादि स्निग्ध पदार्थ हैं और (हविः) नाना प्रकार के उत्तम भोजन हैं यह मैं (ताभ्यः) उन समस्त प्रजाओं के लिये (जुहोमि) संसार रूप यज्ञ में आहुति करता हूं । अर्थात् तुम भी मेरी तरह निष्काम भाव से परस्पर एक दूसरे के लिये आहुति करो ॥ ३८ ॥

यह है तीसरा नाक अथवा स्वर्ग । परमात्मा इस अत्यन्त विलुप्त, पाखण्ड रूप में भी अलभ्यमान, यज्ञ का उद्धार करे जिस से समस्त भूलोकवासी, प्राणीमात्र का कल्याण हो ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

LIBRARY
Date
Dharma 14.5.04
Dharma 15.5.04
Dharma 22.3.04
Dharma 15.5.04
221-05
E A R.
Any other
Checked

पं० आचार्य [illegible] प्रदत्त संग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15.4,3:2
8930

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar